योगविद्या

वर्ष 14 अंक 11
नवम्बर 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर: भारत योग यात्रा 2025

प्लेट: बच्चों के साथ स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

श्रद्धा

आध्यात्मिक मार्ग में श्रद्धा साधक के लिए एक अनिवार्य योग्यता है। कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग और अन्य सभी योगशाखाओं के साधकों में यह मौलिक गुण अवश्य होना चाहिए। श्रद्धा के बिना न तो भक्ति संभव है, न ही ज्ञान। सारा संसार श्रद्धा और विश्वास पर ही टिका है – राजा को अपने दीवान पर विश्वास होता है, पति को पत्नी पर विश्वास होता है, दुकानदार को अपने ग्राहकों पर विश्वास होता है, रोगी को वैद्य पर विश्वास होता है, मुवक्किल को अपने वकील पर विश्वास होता है। कमजोर और डगमगाते विश्वास के साथ कोई भी महान् उपलब्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 11 नवम्बर 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

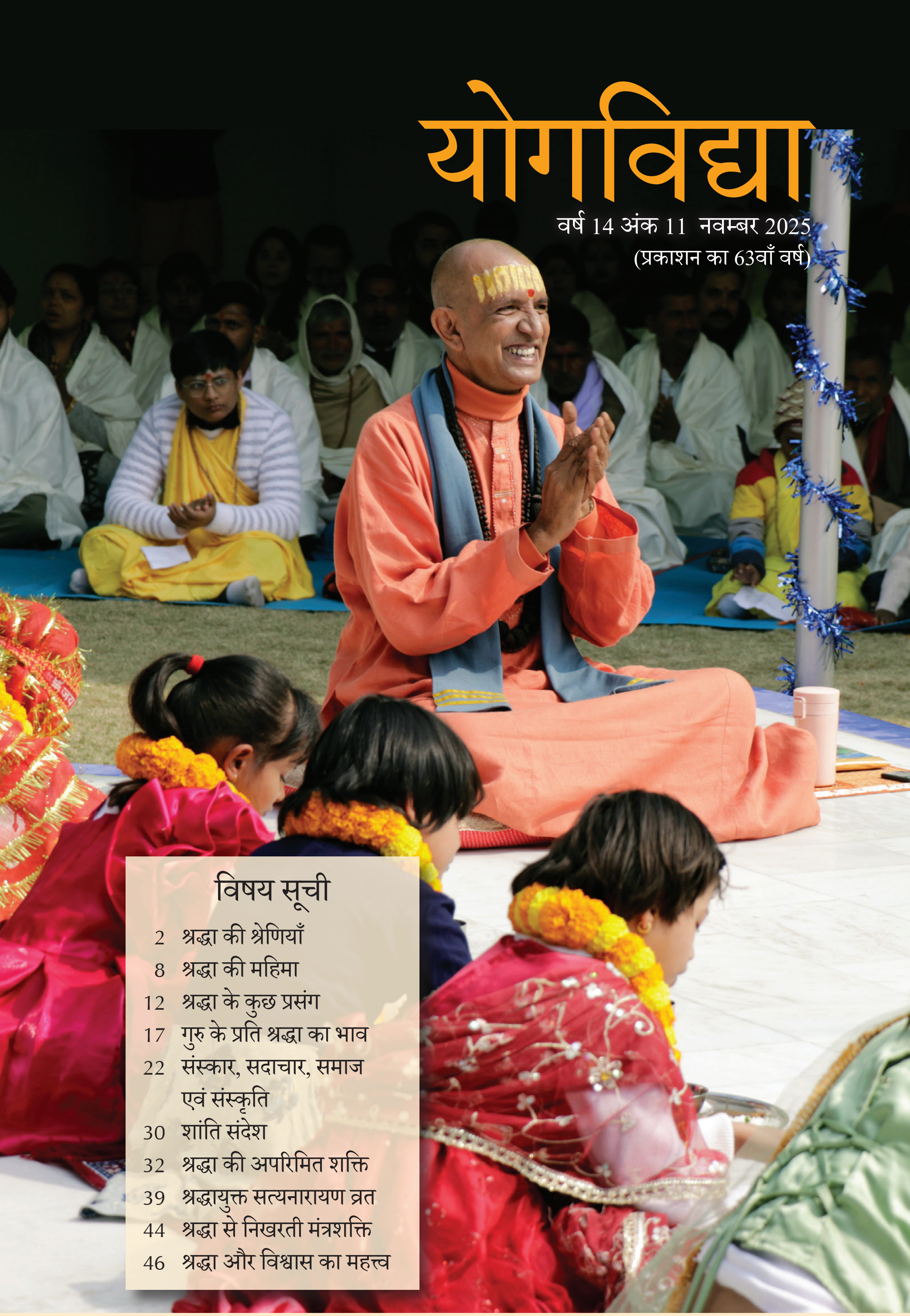

विषय सूची

2 श्रद्धा की श्रेणियाँ
8 श्रद्धा की महिमा
12 श्रद्धा के कुछ प्रसंग
17 गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव
22 संस्कार, सदाचार, समाज एवं संस्कृति
30 शांति संदेश
32 श्रद्धा की अपरिमित शक्ति
39 श्रद्धायुक्त सत्यनारायण व्रत
44 श्रद्धा से निखरती मंत्रशक्ति
46 श्रद्धा और विश्वास का महत्त्व

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

श्रद्धा की श्रेणियाँ

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'देहधारियों की स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा तीन प्रकार की होती है – सात्त्विकी, राजसी और तामसी। हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है।'

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥17.2॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यत् श्रद्धः स एव सः॥17.3॥

मनुष्य की श्रद्धा से पता चलता है कि उसका चरित्र कैसा है। ईश्वर, उसकी कृपा और उसके नाम की शक्ति में सच्ची, पूर्ण, जीवन्त और अटूट श्रद्धा रखिए। ध्यान कीजिए और दिव्य ज्योति के अवतरण के लिए स्वयं को प्रस्तुत कीजिए। आप दिव्यता से ओत-प्रोत हो जायेंगे।

श्रद्धा पर्वत को हिला सकती है। श्रद्धा के बल पर आश्चर्यजनक कार्य हो सकते हैं। श्रद्धा आपको ईश्वर के अन्तःकक्ष तक पहुँचा सकती है। श्रद्धा आपको दिव्य बना सकती है। श्रद्धा से आप शान्ति, आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, प्रसन्नता, मुक्ति, अमरत्व और परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं। अतः ईश्वर के अस्तित्व, शास्त्रों, गुरु के वचनों और स्वयं पर निष्कपट और जीवन्त श्रद्धा रखिए।

श्रद्धा अनमोल दुर्लभ पुष्प है। अपने हृदय की वाटिका में इसे अवश्य लगाइए। इसे प्रतिदिन सद्भाव के जल से सींचिए। संदेह और शंकाओं की खरपतवार को पूरी तरह साफ करते रहिए। तभी इसकी जड़ें गहराई में जायेंगी और शीघ्र ही भक्ति रूपी फल लगेगा।

सत्संग, प्रार्थना, आत्मशुद्धि, ध्यान और शास्त्रों के अध्ययन द्वारा श्रद्धा को मजबूत बनाया जा सकता है। तीव्र अटूट श्रद्धा के बल पर ही आप आध्यात्मिक सीढ़ी पर ऊपर चढ़ सकते हैं। जब कभी संशय प्रबल हो, उसे निर्ममता से उखाड़ फेंकिए। उस दिव्य प्रकाश के अवतरण के लिए अपने

हृदय के द्वार खोलिए, जो सभी प्रकार के ज्ञान और प्रकाश का स्रोत है। बच्चे के समान सरल बनिए। हृदय की गहराई से प्रार्थना कीजिए। भक्ति की लौ तेज होती जायेगी।

आत्मानुभूति एक लोकातीत अनुभव है। जिन सन्तों ने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, और आत्मज्ञान प्राप्त किया है, उनके वचनों में दृढ़ विश्वास के सहारे ही आप आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

श्रुतियाँ जोर देकर यह उद्घोष करती हैं कि उस प्रभु को श्रद्धा, भक्ति और ध्यान द्वारा जानो। श्रद्धा का प्रथम स्थान है। श्रद्धा के बिना आप न तो धारणा कर सकते हैं और न ही ध्यान।

कालहस्ती के शिकारी कन्नप्पा की भगवान शिव के प्रति पक्की और जीवन्त श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन भगवान को जंगली पशुओं का मांस चढ़ाता था। एक दिन शिव ने उसकी भक्ति की परीक्षा ली। शिवलिंग की दाहिनी आँख से अश्रु बहने लगे। कन्नप्पा बहुत दुःखी हुआ। उसने अपनी दाहिनी आँख निकालकर शिवलिंग में लगा दी। अगले दिन शिवलिंग की बायीं आँख से आँसू गिरने लगे। कन्नप्पा ने अपनी बायीं आँख भी निकाल कर

शिवलिंग में लगा दी। भगवान शिव तत्क्षण कन्नप्पा के सामने प्रकट हो गए और उसे आशीर्वाद दिया। उसे तत्काल दोनों आँखें वापस मिल गयीं और वह अमरत्व तथा शाश्वत परमानन्द से युक्त भगवान शिव के कैलासधाम को चला गया। आपको भी कन्नप्पा के समान अडिग श्रद्धा रखनी चाहिए। तभी आप चिरस्थायी शाश्वत शान्ति का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

प्रह्लाद को उसके पिता द्वारा अनेक प्रकार की प्रताड़नायें दी जा रही थीं। उसे पहाड़ की चोटी से नीचे ढकेल दिया गया। उसे हाथी के पैर के नीचे कुचला गया। उसे समुद्र में फेंक दिया गया। उसे खौलते तेल के एक बड़े कड़ाह में डाल दिया गया। उस पर विषैले नाग फेंके गये। उसकी अपनी माँ द्वारा जहर पिलाया गया। इतने पर भी उसने भगवान नारायण पर अपनी श्रद्धा नहीं छोड़ी। वह जोंक की तरह भगवान हरि से चिपका रहा। उसकी श्रद्धा अटूट और अविचलित रही। भगवान के भक्तों की श्रद्धा ऐसी ही होनी चाहिए।

भगवान अनेक प्रकार से आपकी परीक्षा लेंगे। कठिनतम परीक्षाओं और परेशानियों के समय भी आपका विश्वास नहीं हिलना चाहिए। विश्वास ही आपका आधार है। अटूट विश्वास के बल पर ही प्रह्लाद और ध्रुव जैसे दो भक्त बालक अमर हो गये। उनकी उपलब्धि का सरल रहस्य विश्वास में निहित है। सारी बाधायें और कठिनाइयाँ, चाहे वे कितनी ही बड़ी और शक्तिशाली क्यों न हों, सच्ची और जीवन्त श्रद्धा के सामने पूरी तरह नष्ट हो जायेंगी।

मन की आवाज मत सुनिए। यह आवाज आपको भ्रमित कर देगी। अपनी आत्मा की आवाज का अनुसरण कीजिए। यह आवाज आपको ऊपर उठायेगी और अपने लक्ष्य तक पहुँचा देगी।

जब कभी आप ऐसी वार्त्ता सुनें, जो आपकी श्रद्धा को विचलित करने वाली और आपके विश्वास को हिलाने वाली हो, तो शीघ्र उस स्थान को छोड़ दें। जब तक आपका विकास न हो जाए, जब तक आप भगवत् प्रेम में स्थिर न हो जाएँ, तब तक ऐसे लोगों की संगत में न रहें। अपनी वर्तमान अवस्था से एक इंच भी न हिलें। श्रद्धा की आधारशिला पर दृढ़तापूर्वक खड़े रहें। आपको प्रह्लाद जैसी तीव्र, जीवन्त श्रद्धा प्राप्त हो।

कमजोर या डगमगाते विश्वास के सहारे आप ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते, जो महान्, उदात्त और प्रशंसनीय हो। जो विश्वास हर कदम पर लड़खड़ाए, उसके सहारे जीवन के लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। अशक्त और निष्क्रिय श्रद्धा के बल पर आप निर्विकल्प समाधि या महाभाव समाधि

के शिखर पर नहीं चढ़ सकते। आपकी श्रद्धा हिमालय या सुमेरु पर्वतों के समान अचल होनी चाहिए। आपकी श्रद्धा वायुरहित स्थान में जलते हुए दीपक की लौ के समान स्थिर होनी चाहिए।

सभी प्रकार के गलत विश्वासों, कमजोरियों, अंधविश्वासों, गलत धारणाओं तथा अशक्यता की भावना का परित्याग कीजिए। ईश्वरीय संभावनाओं के प्रति विश्वास को दृढ़ता से थामे रहिए। दिव्य जीवन में विश्वास रखिए। आपके भीतर दिव्यता में स्थित रहने की उत्साहपूर्ण आकांक्षा सदैव बनी रहनी चाहिए।

अश्रद्धावानों के लिए वेदों और महावाक्यों का महत्त्व दलदल में डूबी हुई वस्तु के समान है। यह स्थिति स्वर्ग पर दृष्टि जमाए भौंकते हुए कुत्ते जैसी है।

माया संशय के माध्यम से तबाही मचाती है। संशय मानसिक सन्ताप और अशान्ति का प्रमुख कारण है। गुरु-मुख से श्रुतियों का श्रवण करने से प्रमाणगत संशय का निवारण होता है। सुने हुए वाक्यों पर मनन करने से प्रमेयगत संशय दूर होता है। निदिध्यासन या शाश्वत आत्मा पर ध्यान करने से विपरीत भावना का उन्मूलन होता है।

ईश्वर में विश्वास और शास्त्रों का उचित ज्ञान रखिए। यदि अशुद्ध हृदय और विपरीत बुद्धि वाले अज्ञानी लोग गीता, रामायण या भागवत पढ़ेंगे, तो वे अपनी दोष-बुद्धि के कारण उनमें त्रुटियाँ ही ढूँढने का प्रयास करेंगे। वे निरर्थक बातों पर विश्वास करने लगते हैं, जैसे, 'राम ने जंगल में तपस्या कर रहे एक शूद्र को क्यों मारा? क्या यह न्यायोचित है? श्री कृष्ण ने यह कार्य क्यों किया? अवतारों द्वारा ऐसी गलतियाँ क्यों होती हैं?' ऐसे लोगों को पावन ग्रन्थ पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा। उनका मन चलनी की तरह होता है। वे ग्रहण करने योग्य सार पदार्थ को छोड़ देंगे और चीजों का गलत परिप्रेक्ष्य में गलत अर्थ लगायेंगे। जिन्होंने अपना मन शुद्ध कर लिया है, वे ही लोग शास्त्रों की शिक्षाओं के वास्तविक महत्त्व को समझने में सक्षम होंगे।

भगवान राम ने शूद्र का वध किया। उसे प्राणदण्ड मिलना उचित ही था, क्योंकि उसने एक ब्राह्मण के पुत्र की हत्या की थी। विधि-व्यवस्था और धर्म की रक्षा के लिए श्रीराम ने यह कार्य किया। क्या आप सृष्टि के स्वामी में भी कोई दोष देख सकते हैं, जो सर्वज्ञ है और जीव के कर्मों की प्रकृति के अनुसार उनके फल का नियन्ता है? कुछ संकीर्ण मानसिकता वाले रूढ़िवादी लोग शरारत करते हैं और सत्य को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं। यह पुरोहित प्रपंच और धार्मिक धोखेबाजी है।

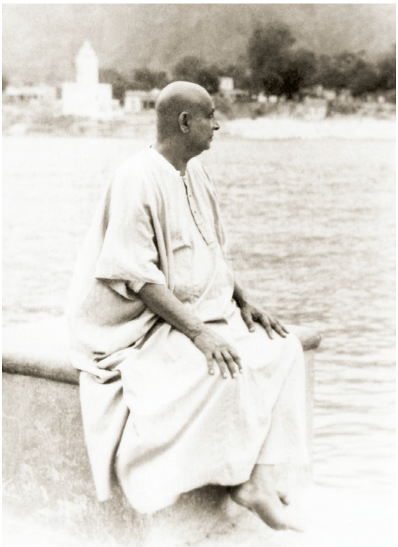

भगवान राम परमात्मा हैं, वे अन्तर्यामी हैं और सभी प्राणियों के रक्षक हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी हैं। वे भगवान हरि हैं। वे अजन्मा और अमर हैं। भगवान हरि लोक संग्रह के लिए श्रीराम के रूप में प्रकट हुए और पुनः अन्तर्धान हो गए। उनका शरीर चैतन्य था, यद्यपि देखने में वह हाड़-मांस का नजर आता था। यह याद रखिए, इस बिन्दु को अच्छी तरह समझिए।

भगवान राम या भगवान कृष्ण को एक सामान्य मनुष्य के स्तर पर लाना और उनके कार्यों के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना निरी मूर्खता ही होगी। कुछ ऐसे अकर्मण्य लोग होते हैं, जो केवल कौतूहलवश ऐसी बातों में रुचि लेते हैं और अनावश्यक वाद-विवाद में अपना समय नष्ट करते हैं। वे केवल यह दिखाना चाहते हैं कि हम भी विद्वान् हैं और धार्मिक विषयों में रुचि रखते हैं।

ऐसे लोग किसी प्रकार की साधना नहीं करते। उनमें वैराग्य भी नहीं होता और वे बेकार की गपशप में अपना समय नष्ट करते हैं। उनमें न शास्त्रों की सही समझ होती है, न भगवान या उनकी लीलाओं पर श्रद्धा होती है। आजकल व्यावहारिक वेदान्त तो कहीं देखने में नहीं आता। आप केवल वेदान्तिक गपशप अवश्य सुन सकते हैं। यह कहना कि भगवान राम ने कोई गलत काम किया, ईश-निन्दा ही है। सच्चा साधक कभी ऐसी तुच्छ बातों में नहीं पड़ता। जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग भगवान की पूजा और सेवा में होना चाहिए। तर्क-वितर्क का कोई स्थान नहीं है। आपको कुछ व्यावहारिक साधना करनी चाहिए और इसी जन्म में मोह के सागर को पार कर लेना चाहिए। धर्म एक अनुभूति है। हमें प्रतिक्षण आदर्श आध्यात्मिक जीवन जीना चाहिए। जब मित्र ऐसी बात करें, तो उधर से कान बन्द कर लीजिए, मौन हो जाइए, या तत्काल वह स्थान छोड़ दीजिए। आपको शान्ति मिलेगी। आध्यात्मिक साधना के लिए आपका बहुत समय बच जायेगा।

धर्म किसी क्लब की मेज-कुर्सी पर वार्तालाप का विषय नहीं है। यह तो उस विश्वास का नाम है, जो ईश्वर की पूजा और ज्ञान में सहायक होता है। चंचल इन्द्रियों को समेटकर और मन को नियंत्रित करके दीर्घकाल तक लगनपूर्वक साधना द्वारा शाश्वत आत्म की ओर प्रवाहित व्यावहारिक जीवन ही धर्म है।

यदि एक श्वेत वस्त्र को रंगीन जल में डाला जाए तो वह भली-भाँति रंग जाता है। ठीक इसी प्रकार सन्त के निर्देश शान्त, शुद्ध और भोगेच्छारहित मन वाले साधक के हृदय में प्रवेश कर स्थित हो जाते हैं। इसीलिए साधक से अपेक्षा की जाती है कि श्रुतियों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अभ्यास आरम्भ करने के पूर्व वह विवेक, वैराग्य, साम, दाम, श्रद्धा और उपरति, अर्थात् षट् सम्पत् में स्थित हो जाए। सत्य और ईश्वर-साक्षात्कार के मार्ग पर चलने वाले साधक के लिए मन एवं इन्द्रियों का अनुशासन तथा शुद्धिकरण प्राथमिक आवश्यकतायें हैं।

जिन लोगों ने अपने दोषों और अशुद्धियों को दूर नहीं किया है, उनके सामने अगर ईश्वर की चर्चा की जाती है, तो वे या तो विश्वास ही नहीं करते या उल्टा अर्थ लगाते हैं। ऐसा ही तो इन्द्र, विरोचन आदि के साथ भी हुआ था। अतः सैद्धान्तिक ज्ञान उसी के अन्दर फलित होता है, जिसने इस जन्म या पूर्वजन्म की तपस्या द्वारा स्वयं को शुद्ध कर लिया है। श्रुति कहती है – *यस्य देवे पराभक्ति: यथा देवे तथा गुरौ तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:* अर्थात् जिसकी ईश्वर में महान् भक्ति है, और जितनी भक्ति ईश्वर में है, उतनी ही भक्ति अपने गुरु के प्रति है, उस महान् आत्मा के अन्दर ही उपनिषदों के रहस्य प्रकाशित होते हैं।

साधुओं के परित्राण, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए भगवान कृष्ण और भगवान राम के रूप में भगवान श्री हरि का अवतार हुआ। भगवान कृष्ण कहते हैं, 'मेरे मनुष्य रूप को देखकर मूर्ख लोग मेरा निरादर करते हैं। वे अज्ञानी लोग मेरी सर्वोच्च प्रकृति को नहीं जानते, और न यह जानते हैं कि मैं समस्त प्राणियों का महान् ईश्वर हूँ।' गीता, रामायण, भागवत और अन्य शास्त्रों का अध्ययन कीजिए तथा उन्हें ठीक से समझिए। अशान्त इन्द्रियों, निकम्मे मित्रों तथा निरर्थक वार्तालाप के प्रभाव में न आयें। श्रद्धा और भक्ति की सहायता से परमात्मा के परम तत्त्व को जानिए तथा उनकी कृपा से परमानन्द, परम शान्ति और परम ज्ञान प्राप्त कीजिए। आप सबको ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो!

श्रद्धा की महिमा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रद्धा और विश्वास फूल में सुगन्ध, चन्द्रमा में शीतलता और सूर्य में ताप की तरह होते हैं। जहाँ गुलाब का फूल है वहाँ सुगन्ध को लाना नहीं पड़ता, सुगन्ध अपने आप आती है। उसी तरह से श्रद्धा-भक्ति मनुष्य के अन्दर प्राणों की तरह रहती है। जिस वक्त तुम पैदा हुए, उस वक्त तुम्हारे पास एक शरीर था, प्राण थे, और इनके साथ एक अन्य चीज थी। वह चीज थी श्रद्धा और विश्वास।

श्रद्धा-विश्वास को बाहर से आयात नहीं करना पड़ता। यह अपने अन्दर में छुपी हुई शक्ति का नाम है। जैसे बीज में वृक्ष, दूध में मक्खन और काठ में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार श्रद्धा मुझमें, तुममें और सबमें प्रसुप्त, गुप्त, अदृश्य और अव्यक्त रूप में रहती है।

श्रद्धा दिखाई नहीं देती है। गेहूँ के दाने में गेहूँ का पौधा दिखाई देता है क्या? अगर गेहूँ को टुकड़े-टुकड़े करके सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखोगे, उसका रासायनिक विश्लेषण करोगे तो भी उसके अन्दर छिपा हुआ गेहूँ का पौधा नहीं दिखेगा। वह तभी दिखेगा जब तुम उसको मिट्टी में बोओगे। उसी प्रकार श्रद्धा खोजने पर भी नहीं मिलती, उसे जाग्रत करना पड़ता है।

श्रद्धा को जाग्रत और प्रकट करने का प्रथम आधार माता होती है, दूसरा आधार इष्ट देवता होता है और तीसरा आधार गुरु होता है। जैसे गेहूँ के बीज में से गेहूँ के पौधे को प्रकट करने के लिए पहली आवश्यकता धरती की होती है, फिर जल, वायु और सूर्य की, वैसे ही अपनी अन्तर्निहिति श्रद्धा को जाग्रत करने का उपाय निकालना पड़ता है।

श्रद्धा के आधार

माता श्रद्धा का प्रथम आधार या प्रतीक है। अगर माँ के प्रति किसी के मन में श्रद्धा की कमी हो या श्रद्धा न हो तो समझना कि उसकी श्रद्धा को काठ मार गया है। तुम्हारी माँ सांसारिक, सामाजिक, चारित्रिक, शैक्षणिक या आर्थिक दृष्टि से जैसी भी हो, एकदम गँवार ही क्यों न हो, मगर माँ तो माँ है। एक छोटी-सी घटना आपको बतलाता हूँ। आदि शंकराचार्य आठ साल की उम्र में अपनी माँ से आज्ञा लेकर संन्यास लेने चले गए थे। संन्यास लेने की आज्ञा

देते हुए उनकी माँ ने कहा था, 'बेटा, मेरी अन्त्येष्टि तेरे हाथ से होनी चाहिए।' उन्होंने कहा, 'हाँ, होगी।'

उन्होंने दिग्विजय की और चारों दिशाओं में वैदिक धर्म की ध्वजा फहराई। जब माँ की मृत्यु हुई तब वे अन्त्येष्टि के लिए उत्तर भारत से दक्षिण भारत गए और अपने हाथों से माँ की अन्त्येष्टि की, जबकि संन्यासी के लिए अन्त्येष्टि में शामिल होना भी पूर्णतः वर्जित है। माँ के प्रति श्रद्धा इसको कहते हैं। माँ के प्रति जब श्रद्धा होती है तब सारे वेद झूठे हो जाते हैं, स्मृतियों की परवाह भी नहीं की जाती। स्मृतयाँ कहती हैं, संन्यासी को अन्त्येष्टि में शामिल नहीं होना चाहिए, मगर उन्होंने अन्त्येष्टि अपने हाथ से की थी। यह एक छोटा-सा उदाहरण है।

इस श्रद्धा को बढ़ाने का दूसरा आधार है, इष्ट देवता। देवता शब्द संस्कृत धातु दिव् से बना है, जिसका अर्थ होता है उज्ज्वल या प्रकाशमान्। जब कोई अदृश्य वस्तु अपने मन में प्रकाशित होती है, उसे कहते हैं देवता। किसी ने शिव को देवता मान लिया, किसी ने विष्णु को, किसी ने गणपति को, किसी ने काली को, तो किसी ने हनुमानजी को। हर जाति, हर कुल में अलग-अलग देवता हुए हैं। आदिवासी लोग बूढ़े महादेव को मानते हैं। बंगाल के लोग देवीजी को मानते हैं। इसी प्रकार से किसी एक देवता का चयन करके उनकी आराधना करनी चाहिए। देवता की आराधना मतलब देवता की नियमपूर्वक पूजा करनी चाहिए। चाहे तुमने उसको कभी देखा हो या न देखा हो, भले ही उसके अस्तित्व का कोई तार्किक आधार न भी हो, फिर भी उसकी आराधना करते रहो। यह श्रद्धा को विकसित करने का दूसरा आधार है।

तीसरा आधार होता है गुरु। अगर गुरु पर किसी की श्रद्धा अटल, अवचिल हो गई, तब 'गुरु-गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय' वाली बात हो जाती

है, और यही श्वेताश्वतर उपनषिद् कहता है – *यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ, तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः* – जिसकी देवता में परा भक्ति है और उतनी ही भक्ति गुरु में भी है, उसको प्रकाश की प्राप्ति होती है।

श्रद्धा की परख

गुरु शरीर में रहता है, वह प्रकृति पर आश्रित है। देवता पत्थर में रहता है, तीर्थ में रहता है। देवता को कोई खाते, सोते, मरते, बीमार होते हुए नहीं देखता। देवता में तुम कोई दोष नहीं देख सकते, इसलिए देवता पर श्रद्धा हो सकती है। मगर मुश्किल गुरु में है। गुरु में श्रद्धा टूट सकती है, और यहाँ अगर इम्तहान पास कर जाओगे, तो फिर श्रद्धा का रास्ता साफ है। जिसकी श्रद्धा माँ में नहीं टूटी, देव में नहीं टूटी, उसकी श्रद्धा गुरु में टूट सकती है, क्योंकि गुरु प्रकृति के अधीन है। वह खाता है, सोता है, बीमार पड़ता है, हँसता है, चलता-फिरता है। कभी मोटा होता है, कभी पतला रहता है; कभी उसकी दाढ़ी होती है, कभी नहीं होती; कभी गोरा होता है, कभी काला; कभी अंग्रेजी में बोलता है, कभी हिन्दी में; कभी गुस्सा करता है, कभी गुस्सा नहीं करता।

गुरु प्रकृति के धर्मों के आश्रित होने के कारण शिष्य के लिए श्रद्धा की एक कसौटी बन जाता है। इस बात को अच्छी तरह से समझ लो। हमको यह बात आज समझ में नहीं आई, पचास साल पहले समझ में आ गई। जिस व्यक्ति के आधार पर मैंने सर्वप्रथम आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश किया था, वह एक योगिनी, संन्यासिनी थी। उस समय मेरी उम्र अट्ठारह साल की थी। वह इतनी फूहड़ थी कि पूछो मत! और उसकी जबान से छूटते ही सड़क-छाप गाली निकलती थी। वीभत्स वेश, गंदे कपड़े, शरीर से बास निकलती थी, मगर जब वह बोलती थी तो उसके मुँह से चक्रों, नाड़ियों और लोकों की बातें निकलती थीं। मुझे समझ में नहीं आता था कि यह गँवार औरत इतना कैसे जानती है! तब मैंने सोचा कि इससे जरूर कुछ सीखना चाहिए। हमने उससे सीखा, उसने हमको बहुत सिखाया। हमने उसके बाहरी दिखावे से अपनी श्रद्धा को टूटने नहीं दिया, क्योंकि हमको मालूम पड़ गया कि यह भले निपट-निरक्षर-भट्टाचार्य है, मगर जरूर कुछ ऊँची चीज जानती है। उसने हम पर शक्तिपात किया। शक्तिपात का मतलब होता है, एक झलक दी।

गुरु शिष्यों को एक झलक देते हैं, जिसको कहते हैं शक्तिपात। जब तुमको आत्मा की अनुभूति होगी, ईश्वर का प्रकाश मिलेगा, तुम्हारे अन्दर में ज्ञान की

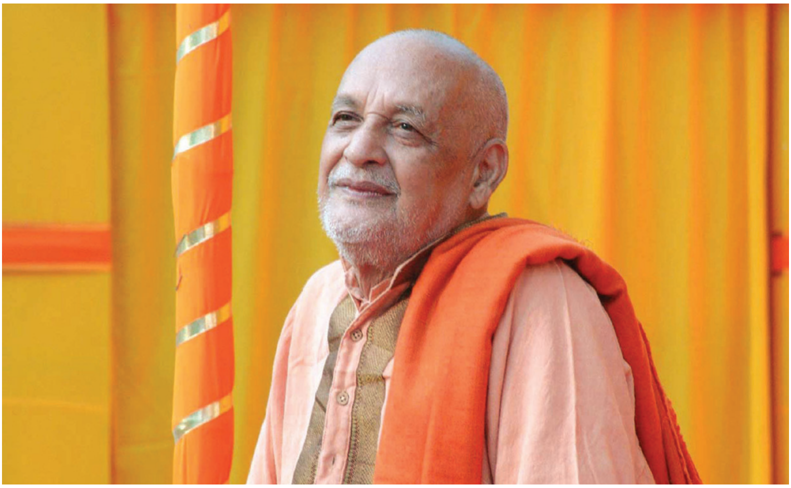

ज्योति का उदय होगा, उस समय तुमको क्या अनुभव होगा? वही मेरे साथ हुआ। मगर उस योगिनी ने मुझसे कहा कि यह अनुभव मैंने तुझे दिया है, अब तुझे यह अनुभव अपने पुरुषार्थ से प्राप्त करना होगा। यह वही अनुभव था जो काकभुशुण्डी को हुआ था रामायण में, जो यशोदा को हुआ था कृष्ण के माटी खाने के बाद। लोक-लोकान्तरों का अनुभव, एक क्षण में अनेक कल्पों का, जन्म-जन्मान्तरों का अनुभव। मेरा सारा माथा उसने पलट दिया। नहीं तो हम संन्यास लेते क्यों? संन्यास का विचार तो मेरे मन में उसी के सम्पर्क के बाद आया। मैं तो जीवन में पुरुषार्थी आदमी रहा, काम करने वाला। खूब पैसा कमाओ, मस्त रहो, आगे बढ़ते जाओ।

गुरु पर श्रद्धा अत्यन्त कठिन है। बड़े-बड़े, उत्तम कोटि के शिष्यों का मन भी डाँवाडोल हो जाता है। कितने लोगों ने अपने गुरु का त्याग कर दिया, केवल इसलिए कि गुरु उनके मन के मुताबिक नहीं थे। वाह! गुरु तुम्हारे मन के मुताबिक निकलेंगे या तुम गुरु के मन के मुताबिक निकलोगे? अजीब हिसाब है! मशीन से, साँचे से जो चीज निकलती है, वह तो आखिर साँचे के मुताबिक निकलनी चाहिए न?

हमारे वैदिक धर्म में जैसे पति-पत्नी का अटूट सम्बन्ध माना जाता है, वैसे ही गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी अटूट माना जाता है। देवोपासना के बाद गुरु के प्रति अपने निश्चित सम्बन्धों को पक्का करना होगा। यही श्रद्धा और भक्ति की कहानी है। तुम अपने मन की गहराइयों में इसे खोजो और पाओ।

श्रद्धा के कुछ प्रसंग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हर महीने की पाँच तारीख को गंगा दर्शन के सत्यम् उद्यान में शिव आराधना सम्पन्न की जाती है। इसकी शुरुआत हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी की पावन स्मृति में की गई थी। दिसम्बर 2009 की पाँच तारीख को उन्होंने समाधि प्राप्त की थी, शिवत्व को प्राप्त किया था और छः तारीख को जब उन्हें भू-समाधि प्रदान कर धरती माँ की गोद में रखा गया, तब देवी की आराधना की जाती है।

इस परम्परा का श्रीगणेश इसी दृष्टिकोण से हुआ था कि हम सब गुरु तत्त्व से अपने आपको जोड़ने का प्रयास महीने में एक बार अवश्य करें। गुरु तत्त्व

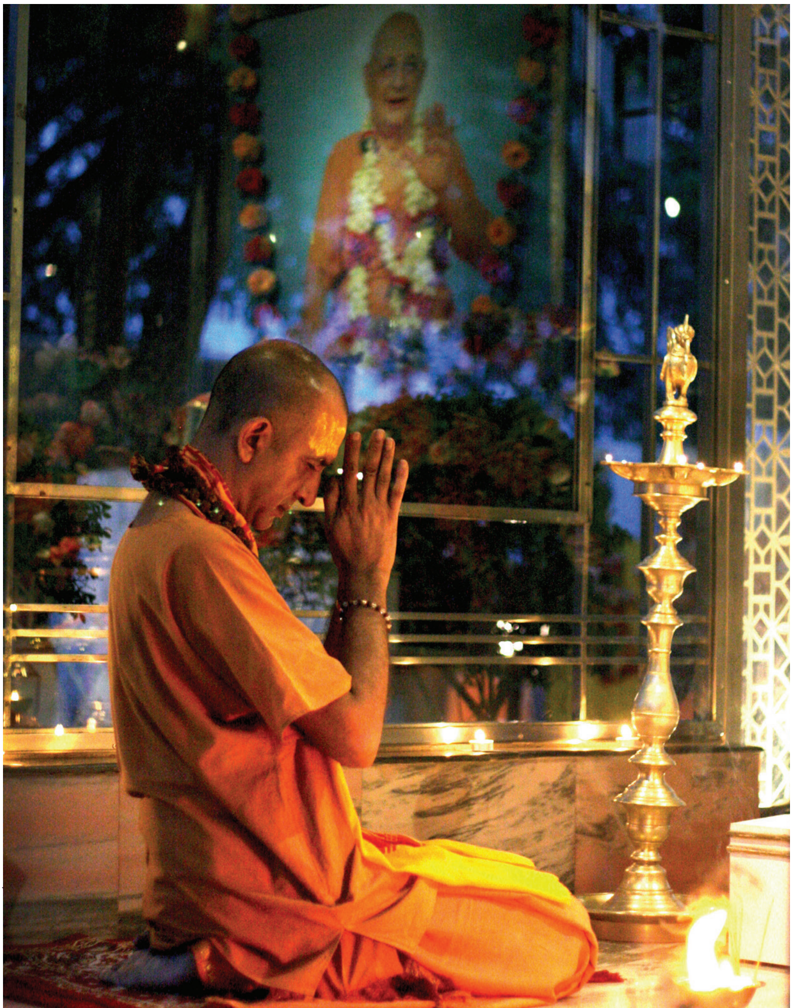

का अपना एक महत्त्व होता है जो आध्यात्मिक ही नहीं, जो भावनात्मक, मानसिक और भौतिक ही नहीं, बल्कि सार्वभौमिक होता है। गुरु तत्त्व श्रद्धा का परिणाम है। मनुष्य अपने जीवन में इसका अनुभव श्रद्धा के बल पर ही करता है। श्रद्धा ही मनुष्य को गुरु तत्त्व से जोड़ती है, श्रद्धा ही उस सूक्ष्म द्वार की चाभी है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि यह श्रद्धा वास्तव में है क्या?

इस शब्द की व्याख्या करें तो इसका अर्थ होता है सत्य से जुड़कर जीवन जीना। यह मात्र दर्शन नहीं है, यह जीवन की वास्तविकता है। जब-जब भी तुमने अपने जीवन में सत्य का आचरण किया है, तुम्हें शान्ति, सुख और संतोष मिला है, लेकिन जब-जब जीवन में सत्य का अभाव रहा है, तब-तब अशान्ति रही है, दुःख रहा है।

एक दृष्टांत के रूप में रामजी का समय देखते हैं। सीता मैया की खोज में वानर चारों दिशाओं में जा रहे हैं। ऐसे में रामजी ने हनुमान को ही अपनी अँगूठी क्यों दी? किसी और को क्यों नहीं दी? जो वानर उत्तर, पूरब या पश्चिम में गये, किसी को तो उन्होंने कोई चिह्न नहीं दिया। फिर हनुमान को क्यों दिया? हनुमान पर इतना विश्वास क्यों? क्योंकि एक आत्मीयता थी। आत्मीयता में द्वैत नहीं होता, बल्कि अपनेपन की जो भावना होती है वह मनुष्य के भीतर श्रद्धा, विश्वास और पुरुषार्थ को जागृत करती है। रामजी ने देखा कि सीता की अगर कोई खोज कर पायेगा तो वह हनुमान ही कर पायेगा।

अब मजेदार बात देखो। मुद्रिका तो हनुमान ने ले ली और चले सीताजी की खोज करने। जब समुद्र के किनारे पहुँचे तो हनुमानजी भी अपना सिर पकड़कर बैठ गये – 'मुझे मालूम नहीं कि मैं समुद्र पार कर पाऊँगा या नहीं!' अगर हनुमानजी को रामजी ने मुद्रिका दी तो हनुमानजी में भी तो यह भाव होना चाहिये न कि रामजी ने इतने विश्वास के साथ मुझे यह मुद्रिका दी है, मुझे ही कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। लेकिन नहीं, ऐसा नहीं हुआ। वे भी समुद्र के किनारे मौन होकर बैठ गये। लेकिन उनकी आत्मीयता थी रामजी के साथ, जिसके कारण गुरु रूप में फिर जाम्बवन्त आते हैं और कहते हैं, 'हनुमान, हम में सबसे शक्तिशाली तुम्हीं हो। तुम्हीं सीता मैया की खोज कर सकते हो।'

लोग कहते हैं कि उन्होंने हनुमानजी को अपने बल की याद दिलाई। लेकिन हनुमानजी को बल की याद दिलाने की आवश्यकता नहीं थी। हनुमानजी को इस चीज़ की याद दिलाई गई कि 'देखो! तुम्हारे आराध्य ने तुम पर इतना विश्वास करके तुम्हें यह मुद्रिका प्रदान की है। इसका यह अर्थ हुआ

कि तुम सक्षम हो। उनका विश्वास है तुम पर, क्योंकि तुम में वह बल है, वह क्षमता है, वह सामर्थ्य है।' यहाँ पर बल की ओर संकेत गौण है, मुख्य चीज है कि तुम पर विश्वास किया गया है। विश्वास अपनों पर होता है और जहाँ पर अपनापन है, वहाँ पर विरोध नहीं होता, व्यक्ति सहज रूप से हर परिस्थिति को मन से स्वीकार कर लेता है।

यह तो रामजी की बात रही, अब आधुनिक समय में आते हैं। केदारनाथ में कुछ साल पहले त्रासदी हुई थी, जिसमें नगर तो नष्ट हो गया, लेकिन मन्दिर बच गया। कहते हैं कि मन्दिर के पीछे एक चट्टान ने आकर जल की धारा को दो प्रवाहों में बाँट दिया, जिसके कारण मन्दिर को क्षति नहीं पहुँची। इसे एक प्राकृतिक प्रक्रिया भी माना जा सकता है कि पत्थर आकर अटक गया, मंदिर बच गया, और इसे एक दैवी चमत्कार भी माना जा सकता है कि जब सब ध्वस्त हो रहा था एक पत्थर ने आकर श्रद्धा के केन्द्र को बचा लिया, एक ऐसा केन्द्र जहाँ पर ऊर्जा जागृत है, जीवित है। जो भी कारण हो, प्राकृतिक या दैविक, एक आराधना का ही केन्द्र बचा।

कुछ और नज़दीक आते हैं। कुछ समय पहले नेपाल में भी बहुत बड़ी त्रासदी घटी। जोरदार भूकम्प आया, काठमाण्डू एक प्रकार से ध्वस्त हो गया, लेकिन कहते हैं कि पशुपतिनाथ मंदिर में दरार तक नहीं पड़ी। मंदिर के मुख्य भवन में कुमारी का स्थान है। बहुत साल पहले हमने भी कुमारी का दर्शन किया था। जब भूकम्प आया तो कुमारी उसी स्थान में लोगों को दर्शन दे रही थीं। वहाँ पर चीन के यात्री भी थे। उन्हें तो विश्वास नहीं है इन सब चीज़ों पर, वे तो अजूबा देखने के लिये आये थे। लेकिन जब भूकम्प का क्रम आरम्भ हुआ तो किसी ने उन चीनियों से कहा कि हाथ पकड़कर कुमारी का ध्यान करो। जिस भवन में वे थे, वह लकड़ी का बना बहुत पुराना भवन है, जिसकी अपनी कोई पक्की नींव तक नहीं है। पर वह भवन सुरक्षित खड़ा रहा, उसके भीतर सब लोग सुरक्षित रहे। जब परिसर का द्वार खोलकर बाहर देखा तो पाया कि पूरा विध्वंस हो गया है।

एक देवता का क्षेत्र और एक देवी का क्षेत्र, घोर विनाश में भी सुरक्षित कैसे रहे? मैं यहाँ पर ये दो उदाहरण इसलिये बतला रहा हूँ कि ये केन्द्र श्रद्धा से जुड़े हैं और श्रद्धा ऐसी आंतरिक शक्ति है जो पहाड़ को भी हिलाकर रख सकती है। श्रद्धा हमारे जीवन रूपी वृक्ष की जड़ है। वह दिखलाई नहीं देती। जो दिखलाई देता है वह है वृक्ष का तना, और वह है आशा। क्या बिना

श्रद्धा के आशा का उदय सम्भव है? नहीं, आशा ही श्रद्धा और विश्वास का भौतिक रूप है।

श्रद्धा अदृश्य को भी दृश्य बना देती है। भक्त अपने भगवान का दर्शन तपस्या के बल पर नहीं, श्रद्धा के बल पर करता है। तपस्या तो मात्र एक विधि है, जो श्रद्धा को प्रबल बनाती है। अपना ही उदाहरण देता हूँ, पंचाग्नि साधना का। रोज़ 60-65 डिग्री तापमान रहता था। पंचाग्नि समाप्त हो गई, लेकिन अभी भी शरीर अन्दर से गर्म है। उस गर्मी को भी जाने में समय लगता है। प्रश्न उठता है कि किस ऊर्जा के बल पर हम वह चीज़ कर पाए। वह शारीरिक ऊर्जा तो नहीं है। मानसिक ऊर्जा भी नहीं है, क्योंकि अगर मन पर निर्भर रहते तो कब के उठकर भाग गये होते कि इतनी गर्मी में बैठने से क्या फायदा! तो फिर किसके बल पर यह सम्भव हो पाया? गुरु के वाक्य पर श्रद्धा, केवल

वही एक चीज़ थी जो हमारे लिये ऊर्जा का कारण बनी। उसके बल पर 70 डिग्री तक झेलेंगे, उसके बाद 80-90 डिग्री तक झेलेंगे! क्यों नहीं, आखिर श्रद्धा ऊर्जा के रूप में अब साथ है।

एक और उदाहरण देता हूँ। परमहंस योगानन्द जी अपनी आत्मगाथा में बतलाते हैं कि जब उनके गुरु, श्री युक्तेश्वर जी का शरीरान्त हुआ था तब वे उस समय पास में नहीं थे। शरीरान्त होने के बहुत दिन पश्चात् योगानन्द जी ने बम्बई के एक होटल में प्रवेश किया। उनके मन में लम्बे समय से यह विचार चल रहा था कि मैं अपने गुरुजी का अन्तिम दर्शन नहीं कर पाया। तब अचानक वे देखते हैं कि उनके गुरुजी सशरीर सामने उपस्थित हो गये हैं। उन्होंने अपने गुरुजी के शरीर को स्पर्श किया, वह रक्त, माँस, मज्जा, हड्डी आदि भौतिक पदार्थों का शरीर था। गुरुजी से एक घंटा बात हुई और उसके बाद गुरुजी अदृश्य हो गये। यह चमत्कार था या आत्ममीयता और श्रद्धा का परिणाम था? जिससे हमारा आत्मीय आन्तरिक सम्बन्ध है, श्रद्धा उस तत्त्व को हमारे आँखों के सामने मूर्त्तरूप दे देती है।

शिष्य अपने गुरु का दर्शन कर पाता है श्रद्धा के बल पर, भक्त अपने आराध्य का दर्शन कर पाता है श्रद्धा के बल पर, क्योंकि श्रद्धा, भले ही लोग इसे धार्मिक अंधविश्वास मानें, मन की एक चैतन्य, शुद्ध, जागृत और उच्च अवस्था है, जो मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा से जोड़ने में, अपनी अन्तरात्मा की ऊर्जा को प्रकट करने में सक्षम है। ऐसा मानकर चलो कि श्रद्धा वह चाभी है जिससे हम ऐसे तालों को खोल सकते हैं जिनके खुलने पर हम अपने इष्ट का, आराध्य का, गुरु का दर्शन, साक्षात्कार और अनुभव प्राप्त करते हैं और उनकी ऊर्जा को आत्मसात् करते हैं।

इसलिए श्रद्धा के विषय को समझना हर व्यक्ति के लिये आवश्यक है। यह दर्शन नहीं है, यह धर्म नहीं है, बल्कि जीवन की एक परिष्कृत और ऊर्जायुक्त अवस्था है। इसीलिये तुलसीदास जी भी कहते हैं कि श्रद्धा के बिना एक सिद्ध भी अपने भीतर स्थित ईश्वर को नहीं देख पाता है –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धास्वान्तस्थमीश्वरम्॥

– 5 मई 2015, गंगा दर्शन

गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

शिष्य प्राय: असमंजस में रहता है कि वह अपने गुरु से किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करे। वह यह जानने के लिये उत्सुक रहता है कि क्या वह गुरु को एक दयालु, करुणामय पिता के रूप में माने जिनके निकट वह प्यार और संरक्षण हेतु जा सके, या वह उनके साथ एक प्रेमी मित्र जैसा व्यवहार करे जिनके साथ वह अपने अन्तरतम के रहस्यों एवं कष्टों का आदान-प्रदान कर सके।

हम गुरु को प्रेम एवं आनन्द के सार-संग्रह या पुंज के रूप में देखते हैं। हम उनके निकट जाना, उनसे तादात्म्य का अनुभव करना एवं सुखद सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु, जब हम ऐसा करना चाहते हैं तो इस प्रक्रिया में अवरोध का अनुभव करते हैं और अपने विचारों, मनोभावों तथा भावनाओं को सम्प्रेषित करने में असक्षम हो जाते हैं।

सर्वप्रथम हमें यह समझना है कि गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध तर्क पर आधारित नहीं है। वास्तव में यदि आप इस सम्बन्ध का विश्लेषण करने एवं कारण खोजने लगें तो आप अन्तत: इसे पूर्णरूपेण अस्वीकार कर देंगे। यह सम्बन्ध पूर्णत: व्यक्तिगत कारणों एवं प्रयोजनों से विकसित होता है और व्यक्तिगत आधार पर ही स्थित होता है। एक सच्चे शिष्य के लिये गुरु में सम्पूर्ण अनुभवमय जगत् समाहित है। वे पिता, माता, मित्र, सम्बन्धी, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और ईश्वर भी हैं। वे सूर्य और चन्द्रमा, पुष्प और वृक्ष हैं। संक्षेप में, शिष्य के जीवन में जो कुछ है, गुरु में निहित है।

वास्तविक तथ्य यह है कि गुरु वही हैं जो आप उनमें देखते हैं। आपका भाव ही गुरु के बारे में आपके अनुभव का निर्धारण करता है। यदि आप उन्हें असीम, अनन्त, शाश्वत अनुभव के रूप में समझते हैं तो आपके लिये वे वैसे ही हैं। किन्तु यदि आप उन्हें एक सामान्य व्यक्ति मानते हैं तो आप उनमें अन्तर्निहित देवत्व का दर्शन करने में सदैव विफल होंगे। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे एक ईश्वरीय सत्ता नहीं हैं, बस इतना कि आप उसे नहीं देख सकते हैं। इसके लिए श्रद्धा से युक्त नेत्र चाहिए।

गुरु एक स्वच्छ दर्पण के समान होते हैं, जिसमें आप अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। वे स्वयं में एक विशुद्ध, उज्ज्वल, देदीप्यमान् आत्मा हैं। आप

गुरु में जो कुछ देखते हैं, वह आपके अपने व्यक्तित्व का ही प्रक्षेपण है। तथापि उनकी शारीरिक उपस्थिति के कारण हम प्राय: यह निश्चय नहीं कर पाते कि उनके साथ कैसा सम्बन्ध स्थापित करें। इस समस्या के समाधान हेतु शास्त्रों में कुछ उदाहरण मिलते हैं जो शिष्य को मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं। तदनुसार वह अपनी भावनाओं और शक्ति को गुरु की ओर प्रवाहित कर सकता है और अन्तत: एक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

श्रद्धा और भक्ति गुरु-शिष्य सम्बन्ध का आधार है। यही मूल सिद्धान्त है। भक्ति के बिना आप गुरु के साथ पूर्ण सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते हैं। इस भक्ति को उत्पन्न करने एवं यथार्थ रूप देने के लिये शिष्य शास्त्रों द्वारा निरूपित चार भावों में से किसी एक का उपयोग कर सकता है। ये भाव हमारे दैनिक जीवन की भावनाओं और मनोभावों से जुड़े होते हैं, इसलिये उन्हें अभिव्यक्त करना आसान है।

सर्वप्रथम दास्यभाव आता है, जहाँ शिष्य एक निष्ठावान्, आज्ञाकारी सेवक है और गुरु उसके स्वामी। समर्पित सेवक का एकमात्र उद्देश्य होता है अपने स्वामी द्वारा दिये गये कार्य को पूर्णता से सम्पादित करना। इसी प्रकार शिष्य भी गुरु के कार्य के प्रति अपने को समर्पित करता है। शिष्य के लिये कोई भी कार्य बहुत दुष्कर नहीं होता। वह इस बात का ख्याल नहीं करता कि उसकी सेवा के बदले गुरु दयालुतापूर्ण और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं या उसकी भर्त्सना करते हैं। सेवा करना उसका कर्त्तव्य है, वह सिर्फ इतना

ही जानता है और इसी बात के लिये सतर्क रहता है। इस भाव का सर्वोत्तम उदाहरण श्रीराम और हनुमान के सम्बन्धों में मिलता है। सेवक शिष्य गुरु के प्रयोजन या निर्णय पर सन्देह नहीं करता। वह सब कुछ गुरु पर छोड़कर सिर्फ आज्ञापालन करता है।

द्वितीय है वात्सल्य भाव, अर्थात् पिता और संतान के बीच का भाव। हम जन्म से ही अपनी पारिवारिक भावनाओं से मजबूती से जुड़े होते हैं। ये हमारे अन्दर स्वाभाविक रूप से उभरती हैं और इसलिये इस वात्सल्य भाव के अधिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। भारत में पिता ज्ञान, विवेक और अनुभव के प्रतीक माने जाते हैं और पुत्र उन्हें उचित सम्मान, प्रेम और निष्ठा प्रदान करता है। पिता के शब्द पवित्र माने जाते हैं और बच्चे उनके प्रति अपने प्रेम और समर्पण के प्रमाणस्वरूप उनकी इच्छाओं का विरोध नहीं करते। इस सम्बन्ध में सर्वोत्तम उदाहरण के लिये एक बार पुन: हमें रामायण के पृष्ठों को ही उलटना पड़ेगा जहाँ राजा दशरथ और उनके पुत्र राम का सम्बन्ध आदर्श और अनुकरणीय माना जाता है। राम राजगद्दी के वैध उत्तराधिकारी थे, किन्तु पिता ने उन्हें चौदह वर्षों का वनवास दे दिया और इस प्रकार राज्य से वंचित कर दिया। लेकिन राम ने पिता की अवज्ञा नहीं की। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा, 'राज्य तो क्या, मैं आपके लिये अपना जीवन भी न्योछावर कर सकता हूँ।'

तीसरा है, ईश्वर भाव। यह भक्त और भगवान के सम्बन्ध को उजागर करता है। गुरु अगम्य ईश्वरत्व के द्योतक हैं और शिष्य है उनका विनम्र भक्त। एक भक्त के रूप में शिष्य स्वयं को गुरु-चरणों में न्योछावर कर देता है और उनका प्रेम एवं संरक्षण चाहता है। वह एक भक्त की भूमिका अपना लेता है, और गुरु के प्रति भक्तियोग का अभ्यास करता है। शिष्य एक लोकोत्तर सत्ता के रूप में गुरु का पूजन करता है और अन्तत: स्वयं को उनमें लीन कर देता है। श्री रामकृष्ण परमहंस और माँ काली के सम्बन्ध में यही स्थिति देखी गयी थी। रामकृष्ण माँ काली से अपनी माता के रूप में प्रेम करते थे। वे उनकी मूर्ति को स्नान करवाते, उनके सामने नृत्य करते, अगरबत्ती जलाते, उन्हें भोजन प्रदान करते और उनके सामने एक छोटे बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोते थे। अन्तत: वे अपने क्षणभंगुर अस्तित्व के प्रति अपनी सजगता का अतिक्रमण करने में सफल हो गये और माँ के साथ एकाकार हो गये।

चौथा है, माधुर्य भाव या सखा भाव। यह दो मित्रों के बीच का भाव है जिनमें पारस्परिक प्रेम के कारण एकत्व स्थापित हो जाता है। राधा और कृष्ण,

अर्जुन और कृष्ण तथा कृष्ण और गोपियाँ इसी भाव से आपस में बँधे हुए थे। कृष्ण और गोपियाँ छोटे बच्चों की तरह क्रीड़ा करते थे, किन्तु वे एक-दूसरे में पूर्णत: तल्लीन थे। राधा अपने जीवन में सिर्फ एक बार, बचपन में कृष्ण से मिली, किन्तु उसकी चेतना पर उस मिलन की इतनी गहरी छाप पड़ी कि वह उन्हें कभी भूल न सकी। भारत में आज भी हम राधा के बिना कृष्ण की कल्पना स्वप्न में भी नहीं कर सकते।

गुरु से सम्बन्ध स्थापित करने हेतु शिष्य अपने लिये इनमें से किसी एक भाव का चयन कर लेता है। ऐसा वह अपनी आवश्यकता एवं व्यक्तित्व के अनुसार करता है तथा इसे यथासंभव उच्चतम अवस्था तक विकसित करता है। यदि वह एक मित्र की आवश्यकता महसूस करता है तो उसे गुरु को अपना मित्र मानना चाहिये। और यदि वह पितृसुलभ प्रेम से वंचित रहा है, तो गुरु उसके माता-पिता हो सकते हैं। यदि शिष्य स्वयं को पूर्णरूपेण गुरु को समर्पित करना चाहता है, तो वह अपने को उनका दास मान सकता है।

यह सब कुछ आपकी अपनी मूल आवश्यकता पर तथा इस बात पर निर्भर रहता है कि आपके व्यक्तित्व का कौन-सा क्षेत्र सर्वाधिक सशक्त है तथा सहजता से अभिव्यक्त हो सकता है। इस बात का कोई विशेष महत्त्व नहीं है कि आप अपने लिये किस भाव का चयन करते हैं, मुख्य बात यह है कि यह भाव स्वत: प्रस्फुटित हो एवं आपके व्यक्तित्व तथा भावनाओं को स्वाभाविक अभिव्यक्ति का मार्ग प्रदान करे।

ये भाव संन्यासी शिष्य को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के शिष्यों के लिये प्रासंगिक हैं। संन्यासी के लिये गुरु सदैव सर्वव्यापी सत्ता का द्योतक है। उसके लिये गुरु परम सत्य का प्रतिरूप है, जिसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिये वह सतत् प्रयत्नशील है।

इस प्रकार शिष्य गुरु से अपने सम्बन्ध को सशक्त बनाने के लिये किसी विशेष भाव का उपयोग एक उपकरण के रूप में करता है। उसके द्वारा अपनाया गया यह भाव उसके सांसारिक व्यक्तित्व से मेल खाता है और इसलिये वह इसे सहजता से समझ सकता और प्रकट कर सकता है। यद्यपि शिष्य किसी एक भाव का उपयोग एक उपकरण के रूप में करता है, उसे गुरु से किसी बात की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये तथा सावधानीपूर्वक निष्काम भाव बनाये रखना चाहिये।

गुरु आपके इच्छानुसार आपके साथ व्यवहार करें या न करें, किन्तु उनके प्रति आपका प्रेम, भक्ति, श्रद्धा एवं नि:स्वार्थ भाव तनिक भी प्रभावित

नहीं होना चाहिये। एक बच्चा आजीवन अपनी माँ को प्यार करता है, चाहे वह उसके प्रति कैसा भी व्यवहार करे, क्योंकि उससे उसका बन्धन बाह्य सम्बन्ध से अधिक गहरा है। इसी प्रकार शिष्य भी गुरु के प्रति अपना सद्भाव बनाये रखने का प्रयास करता है। इस प्रसंग में वह अपने तथा गुरु के बीच के किसी व्यवहार से प्रभावित नहीं होता। कभी-कभी गुरु के प्रति एक निश्चित भाव अपनाते समय शिष्य उन्हें अपनी जटिलताएँ व कुण्ठाएँ हस्तांतरित करने की ओर भी प्रवृत्त होता है। यदि कठोर माता-पिता से मिले कष्टों के कारण वह असुरक्षित हो गया है तो वह गुरु के साथ अपने सम्बन्ध में भी असुरक्षा का अनुभव करता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। शिष्य ने गुरु से इस हेतु सम्पर्क स्थापित किया है कि वह अपने निम्न, नकारात्मक गुणों का अतिक्रमण कर सके, न कि उनमें डूबा रहे। अत: शिष्य को इस बिन्दु पर सदैव सतर्क रहना चाहिये।

गुरु एक ऐसे व्यक्ति के प्रतीक हैं जिनकी ओर आप अपनी भावनाओं को निर्देशित कर सकते हैं ताकि वे उच्चतर एवं सकारात्मक अनुभवों की ओर प्रवाहित हो सकें। उद्देश्य है आपको अपनी सीमाओं से मुक्त करना, न कि बन्धन में डालना। गुरु अभिव्यक्ति की सीमाओं से परे हैं। यदि सीमा या अवरोध कहीं है तो वह आपके अन्दर है और आपको गुरु के प्रति अपने निष्काम प्रेम की सहायता से इसे निर्मूल करने का प्रयास करना है।

अपने ध्यान के अभ्यास में भी आप गुरु का वैसा चित्र विकसित कर सकते हैं जैसा कि आप उन्हें देखना चाहते हैं – पिता, मित्र, स्वामी या ईश्वर के रूप में। आप ध्यानावस्था में उनसे बातें कर सकते हैं। आप कल्पना कर सकते हैं तथा अपने मन में उनसे अपने इच्छानुसार सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। गुरु आपकी चेतना के प्रतीक हो जाते हैं। वे आपकी सजगता को धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए महत्तर, भव्यतर ऊँचाइयों तक पहुँचाते हैं।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भावनाएँ हैं। यदि उनका रचनात्मक उपयोग न किया जाये तो अन्तत: वे नष्ट होने लगती हैं तथा निराशा और विषाद का कारण बन जाती हैं। किन्तु यदि आप इन भावनाओं को उपर्युक्त विधि से गुरु की ओर निर्देशित करें तो इसका तात्पर्य यह होगा कि आप अपनी शक्ति को उच्चतर अनुभव की ओर प्रवाहित और रूपान्तरित कर रहे हैं तथा ऊर्ध्वगामी बना रहे हैं। और वह उच्चतर अनुभव है गुरु के साथ एकत्व का अनुभव।

संस्कार, सदाचार, समाज एवं संस्कृति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्रकृति को जीवन के अनुकूल बनाना और जीवन को दिव्यता के अनुभव के अनुकूल बनाना वैदिक सभ्यता का आधार था, और आज भी है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने तीन मार्ग निर्धारित किए – एक व्यक्तिगत विकास के लिए, दूसरा परिवार और समाज के उत्थान के लिए, और तीसरा व्यक्ति, प्रकृति और दिव्यता के बीच संबंध विकसित करने के लिए। कालान्तर में हम इस ज्ञान से अलग होते गए, क्योंकि हम अध्यात्मवाद से भौतिकवाद की ओर मुड़ गए।

भौतिकवाद में कोई बुराई नहीं है, लेकिन व्यक्ति में यह देखने की क्षमता भी होनी चाहिए कि वह कहाँ जा रहा है और वह रास्ता सही है या गलत। अगर भौतिकवाद आपको गलत रास्ते पर ले जाता है और आपके पतन का कारण बनता है, तो यह गलत है। अगर आप माया द्वारा रचित इस भौतिक संसार में रहते हुए भी धर्म और न्याय के मार्ग पर चल सकते हैं, तो यह सही है। इसलिए, भौतिकवाद का त्याग या अवहेलना नहीं करनी चाहिए, बल्कि आपको अपने जीवन में एक संतुलन बनाना होगा। यहीं पर लोग असफल होते हैं, वे ऐसा संतुलन नहीं बना पाते।

सब कुछ जानते हुए भी आप अपनी इंद्रियों और प्राणों को गलत काम करने से नहीं रोक पाते। आप क्यों नहीं रोक पाते और रोकने का उपाय क्या

है, इसका उत्तर भी प्राचीन शास्त्रों में दिया गया है। यह प्राण प्रत्याहार नामक ध्यान के अभ्यास से किया जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मन द्वारा उत्पन्न जुड़ाव की भावना को प्राणों से हटाया जाता है।

जब प्राण शरीर छोड़ देते हैं, तो आपका शरीर क्या बन जाता है? मृत। इसी तरह यदि आप घृणा से प्राण निकाल देते हैं, तो घृणा मर जाती है। यदि आप किसी को नापसंद करते हैं और आप उस नापसंदगी के अनुभव से प्राण निकाल देते हैं, तो नापसंदगी का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। किसी विषय या वस्तु से प्राण को इस प्रकार वापस खींच लेना कि वह निरर्थक या अप्रासंगिक हो जाए, प्राण प्रत्याहार कहलाता है। यह ध्यान का एक अभ्यास है जो प्राचीन योग ग्रंथों में दिया गया है। आधुनिक टीकाकार इन पुरानी विधियों से परिचित नहीं हैं, उनके बौद्धिक ज्ञान का एकमात्र आधार महर्षि पतंजलि के योग सूत्र हैं। यदि आप अन्य प्राचीन शास्त्रों को देखें तो आप पाएँगे कि उन्होंने स्पष्ट रूप से समझाया है कि कैसे आप एक व्यवस्थित क्रम का पालन करके अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

संतुलन

संतुलित जीवन जीने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने चार सिद्धांतों का उल्लेख किया है – अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। जब आप संसार में हों, तो अर्थ और काम को अपने पहिये बनाएँ। जब आप अपनी अंतरात्मा या ईश्वर के साथ हों, तो धर्म और मोक्ष को अपने पहिये बनाएँ। लेकिन जब आप एक जगह से दूसरी जगह जाना चाहते हैं, तो संतुलन होना जरूरी है; सभी पहियों में हवा का समान दबाव होना जरूरी है। अगर एक पहिये में कम दबाव होगा तो पहिया जल्दी खराब हो जाएगा भले ही गाड़ी चलती रहे। पहिए की क्षति का अर्थ है कि इरादा विकृत हो जाएगा, कोई और चिंतन उस पर थोप दिया जाएगा।

ऐसे कई लोग होते हैं जो वर्षों तक पूजा-पाठ करते हैं, पर फिर उनके जीवन में कुछ अनहोनी हो जाती है और वे कहते हैं, 'भगवान मुझे दंड क्यों दे रहे हैं? मैंने तो इतना पूजा-पाठ किया है।' वे अपना सारा विश्वास खो देते हैं, यहाँ तक कि भगवान से नफरत करने लगते हैं। यदि आपका विश्वास इतनी आसानी से डगमगा सकता है तो आप भक्त नहीं हैं। आपने जीवनभर एक मार्ग का अनुसरण किया है, फिर भी मात्र एक घटना आपको भगवान को अस्वीकार करने पर मजबूर कर देती है। इसका मतलब है कि आप कभी भक्त

थे ही नहीं। आपके घर-परिवार में हर दिन इतनी सारी चीजें घटती हैं, क्या आप एक-दूसरे को अस्वीकार कर देते हैं, हर असहमति पर घर छोड़कर चले जाते हैं? नहीं, आप समझौता करते हैं। फिर आप भगवान के साथ समझौता क्यों नहीं कर सकते? यहाँ तो आप गाली-गलौज करते हैं और तस्वीरें, माला, मंत्र फेंक देते हैं! जब कोई समझौता नहीं हो पाता तो इसका मतलब है कि लोग बहुत अधिक भौतिकवादी और तामसिक हो गए हैं। यह गहन तमस् की, भौतिकवाद की पराकाष्ठा की स्थिति है। आप अपने भोग में इतने उलझे हुए हैं कि सारी विवेकबुद्धि, स्पष्टता और आंतरिक शुद्धता धुंधली हो गई है।

दूसरी ओर, जब धर्म और मोक्ष की अति होती है, सत्त्व की अधिकता होती है तो व्यक्ति संसार से विमुख हो जाता है। आप पायेंगे कि हर संस्कृति में ऐसे लोग होते हैं जो संसार का त्याग कर देते हैं। ऐसे त्याग को आध्यात्मिक उपलब्धि कहा जाता है, लेकिन केवल किसी चीज का त्याग करना आध्यात्मिकता का संकेत नहीं है। जब किसी भी स्थिति में अति होती है तो अनायास ही अरुचि का अनुभव होता है और लोग इसे त्याग कहते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, पर आपको लगता है कि व्यक्ति त्याग का विकल्प चुन रहा है। यहाँ भी संतुलन की आवश्यकता है।

एक बार महर्षि दयानंद ने अपने गुरु से कहा कि वे हिमालय जाना चाहते हैं। गुरुजी ने पूछा, 'तुम हिमालय में क्या करोगे?' उन्होंने कहा, 'मैं आत्म-ज्ञान और मुक्ति के लिए साधना करूँगा जिस उद्देश्य से मैंने संन्यास लिया है।' गुरुजी ने कहा, 'मैं तुम्हें हिमालय जाने की अनुमति नहीं दूँगा।' वे चौंक गए और कारण पूछने लगे। गुरुजी ने कहा, 'अगर हिमालय की किसी गुफा में प्रकाशमयी ज्योति को कैद कर दें तो इससे किसी को लाभ नहीं होगा। लेकिन अगर हम इसे चौराहे पर रख दें तो यह हर राहगीर को रास्ता दिखाएगी। तुम्हारे गुरु के रूप में मेरा यह कर्तव्य है कि मैं तुम्हें यह स्पष्ट रूप से बताऊँ। अपने जीवन में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के बीच संतुलन बनाओ और इसी मार्ग पर चलते रहो।' इसके बाद महर्षि दयानंद ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। शेर की तरह गर्जन करते हुए उन्होंने हजारों अन्य लोगों को रास्ता दिखाया। यह एक उदाहरण है जो दर्शाता है कि गुरु के निर्देशों का पालन करके जीवन में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के बीच संतुलन बनाना संभव है।

उन सभी लोगों के जीवन पर गौर करें जिन्होंने मानवता के लिए काम किया है और जिनके नाम का हम गुणगान करते हैं। स्वामी विवेकानंद कर्म

Long long ago, in the island of

से नहीं भागे, बल्कि उन्होंने अपने जीवन में धर्म और कर्म के बीच संतुलन बनाया। आदि शंकराचार्य ने आठ वर्ष की आयु में अपना मिशन शुरू किया और बत्तीस साल की उम्र में संसार से चले गये। स्वामी शिवानंद जी अपने जीवन के अंत तक काम करते रहे, वे हिमालय की किसी गुफा में नहीं चले गए। हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी ने भी अपने जीवन के विभिन्न चरणों में चारों पुरुषार्थों में संतुलन बनाए रखा। जिन लोगों को महान् माना जाता है, उनके जीवन में चारों पहिये पूर्ण संतुलन में होते हैं। ऐसे लोगों को महात्मा कहा जाता है।

गांधीजी को महात्मा गांधी इसलिए कहा जाता था कि उनके जीवन में चारों पहिये समान रूप से सशक्त थे। उन्होंने कभी धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा और न ही अन्याय को स्वीकार किया। साथ ही, उन्होंने कर्म का मार्ग अपनाया, पूरे समाज की स्वतंत्रता के लिए कड़ी मेहनत करके। उनके कार्यों का उद्देश्य दूसरों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना था, इसलिए उन्होंने अर्थ पक्ष की उपेक्षा नहीं की। राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ति उनकी इच्छा, उनकी प्रेरणा थी, यह उनके जीवन का काम पक्ष था। इस प्रकार उनके जीवन में चारों पुरुषार्थों का समावेश देखा जा सकता है, और इसलिए उन्हें महात्मा कहा जाता है। जो केवल धर्म और मोक्ष के लिए कार्य करता है, उसे योगी कहा जाता है, और जो केवल अर्थ और काम के लिए कार्य करता है, उसे भोगी कहा जाता है।

ईश्वर के घर में रहना

हमारे ऋषि-मुनियों ने हमेशा कहा है कि आपको अपना जीवन इस भाव के साथ जीना चाहिए कि यह पूरा संसार ईश्वर का घर है। आपके कर्म इसी विश्वास पर आधारित होने चाहिए। अगर आप किसी के घर जाते हैं, तो आप वहाँ के लिए अनुकूल आचरण का पालन करते हैं, आप अपनी मनमानी नहीं करते। आप जानते हैं कि आप मेहमान हैं, आप दिए गए भोजन एवं अन्य सुविधाओं का आनंद लेते हैं और अपनी यात्रा के अंत में धन्यवाद कहकर चले जाते हैं। उसी तरह यह पूरा संसार ईश्वर का घर है और आप यहाँ मेहमान बनकर आए हैं। यह आपका घर नहीं है, इसलिए यहाँ के नियमों का पालन करें। ईश्वर के घर के नियम क्या हैं? केवल एक ही है – धार्मिक आचरण का पालन।

धार्मिक आचरण का अर्थ है सकारात्मक विचार, सकारात्मक व्यवहार और सकारात्मक कर्म। इनका पालन करते हुए आप इस संसार में रहिये।

जो कुछ भी आपको मिलता है, उसे ईश्वर का उपहार मानकर संतुष्ट रहिये। ईशावास्य उपनिषद में भी यही कहा गया है – *ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्, तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्*।

आप ईश्वर के घर अतिथि बनकर आए हैं, जो कुछ भी आपको दिया जाए, उसका आनंद लें, लेकिन यह जानते हुए कि इसमें से कुछ भी आपका नहीं है और उसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करें। यही वैदिक चिंतन है। जब हम ईश्वर के घर में रहते हैं, तो हमारे विचार, व्यवहार और कर्म सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट होने चाहिए। हमें उन्हें उत्कृष्ट बनाने का प्रयास करना चाहिए। इसके साथ ही भोग के अनुभव के प्रति भी सजगता होनी चाहिए। भोग रोग की ओर न ले जाए, बल्कि योग की ओर। यह मानव जीवन का लक्ष्य स्पष्ट करता है।

सकारात्मक कर्मों का सृजन

जब आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि आपको अपने जीवन में संतुलन लाना है, तो आपके कर्म बदल जाएँगे। उंगलियाँ कलम उठाकर सुंदर लिखावट लिख सकती हैं, वे खाना उठाकर मुँह में डाल सकती हैं, वे आपस में मिलकर किसी के गाल पर जोरदार थप्पड़ मार सकती हैं, या वे धीरे से सहलाकर प्यार जता सकती हैं। कर्मेन्द्रिय एक ही है, फिर भी वह आपकी भावनाओं के अनुसार अलग-अलग चीजें व्यक्त कर सकती है। अगर आपकी भावना सकारात्मक है तो इंद्रियों की अभिव्यक्ति भी सकारात्मक होगी। आखिर, जीवन में आपको किसी भी चीज का अनुभव क्या कराता है? शरीर और मन का अनुभव तो सभी करते हैं, लेकिन शरीर और मन को जो प्रभावित करता है, वह भाव ही है।

अगर मन में एक सकारात्मक विचार आता है तो वह आपके कर्मों को सकारात्मक तरीके से प्रभावित करता है। अगर मन में विचार आता है, 'मैं बहुत थक गया हूँ' तो वह इन्द्रियों को प्रभावित करता है और आप थकान का अनुभव करने लगते हैं। श्री स्वामीजी कहते थे कि जैसा तुम सोचते हो वैसा ही बन जाते हो। अगर तुम खुद को बीमार समझो तो सचमुच बीमार हो जाओगे। वे कहा करते थे कि बीमार व्यक्ति को सबसे पहले सोचना चाहिए कि 'मैं स्वस्थ हूँ'। लेकिन ऐसा सोच पाना मुश्किल है।

अगर आपको छोटी-सी फुँसी हो जाए और आप सोचने लगें, 'अरे, कहीं यह कैंसर तो नहीं! मुझे यकीन है कि यह कैंसर ही है' तो वह कैंसर बन ही

जाएगा क्योंकि नकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव अधिक होता है। अगर आपके शरीर में कहीं कैंसर वाकई पनप रहा हो और आप सोचें कि वह छोटी-सी फुँसी में बदल जाए तो यह इतनी आसानी से नहीं होगा, क्योंकि आपके जीवन में वैसी सकारात्मक शक्ति और आस्था नहीं है। इसलिए श्री स्वामीजी कहा करते थे कि रोगी को सोचना चाहिए कि 'मैं स्वस्थ हूँ'। धीरे-धीरे वह विचार शरीर को प्रभावित करेगा, अन्तत: मन शरीर पर हावी हो जायेगा।

अपने सत्संगों में श्री स्वामीजी ने कहा है कि जब लोग स्वास्थ्य लाभ के लिए आश्रम आते थे तो वे उनसे कहते थे, 'यहाँ एक सामान्य, स्वस्थ व्यक्ति की तरह रहो। यह मत सोचो कि मैं बीमार हूँ, मैं चल नहीं पाऊँगा। बल्कि सोचो कि मैं भला-चंगा हूँ।' सबसे पहले मानसिकता बदलनी होगी, क्योंकि मन द्वारा उत्पन्न नकारात्मक स्पंदन शरीर पर आक्रमण करते हैं। अगर आपको लगता है कि आप थके हुए हैं, तो पाँच मिनट के भीतर आपको थकान महसूस होने लगेगी। अगर आपको लगता है कि आप ऊर्जावान् और सबल हैं तो पाँच

मिनट में आपकी रीढ़ सीधी हो जाएगी। इसका अर्थ है कि विचार इंद्रियों को प्रभावित करते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि विचार प्राणों को प्रभावित करते हैं और प्राण इंद्रियों को सक्रिय करते हैं। यही क्रम है – मन, प्राण, इंद्रियाँ, और इसके विपरीत – इंद्रियाँ, प्राण, मन। सूचनाओं का आदान-प्रदान इसी क्रम में होते रहता है। इसीलिए ध्यान के अभ्यासों में पहले शरीर को शांत किया जाता है और फिर आप मन पर काम करते हैं। मन पर काम करने के बाद आप स्वयं को बहिर्मुखी बनाने के लिए पुनः शरीर में वापस आते हैं।

समाज, संस्कार, संस्कृति और सदाचार

हमें यह जीवन एक उद्देश्य के लिए मिला है, फिर भी अधिकांश लोग इस उद्देश्य को जाने बिना जीते हैं। वे जन्म लेते हैं, स्कूल जाते हैं, कुछ ज्ञान अर्जित करते हैं, कोई पेशा अपनाते हैं, सामाजिक संबंध बनाते हैं, परिवार बढ़ाते हैं, और अंततः मर जाते हैं। आपने अपने साठ, सत्तर या अस्सी साल के जीवन में जो कुछ भी किया है, उसका कोई उद्देश्य नहीं रहा है। लेकिन अगर आप एक ऐसे ढाँचे में जीते हैं जहाँ शुरू से ही एक उद्देश्य और एक लक्ष्य हो, तो जीवन की पूरी संरचना ही बदल जाएगी।

शरीर को चलने के लिए दो पैरों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, जीवन में आगे बढ़ने के लिए दो चीजों की आवश्यकता होती है – संस्कार और संस्कृति। जब ये दोनों मौजूद होते हैं तो परिणाम सत्कर्म और सदाचार होता है। यह सत्कर्म समाज में अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार ये चार 'स-कार' हैं – संस्कार, संस्कृति, सदाचार और समाज। ये मानव जीवन की चक्रवत् प्रक्रिया को परिभाषित करते हैं, क्योंकि ये एक-दूसरे के साथ घूमते रहते हैं। यदि आचरण अच्छा है, तो परिणाम एक अच्छा समाज होगा। एक अच्छा समाज अच्छे संस्कारों का विकास सुनिश्चित करता है, और अच्छे संस्कारों के परिणामस्वरूप एक अच्छी संस्कृति बनती है। यही विकास का क्रम है। योग और अन्य आध्यात्मिक विज्ञान इसे ध्यान में रखते हैं। रोग प्रबंधन या तनाव प्रबंधन तो व्यक्तिगत और अस्थायी जरूरतें हैं। आप आज बीमार हो सकते हैं, पर छह महीने बाद आप ठीक हो जाएँगे। यह शरीर की एक अस्थायी स्थिति है। जो शाश्वत और लाभकारी है, उसकी निरंतरता होती है। समाज संस्कारों, सदाचार और संस्कृति के आधार पर निरंतर विकसित होते हैं। जितना अधिक आप इन्हें परिष्कृत करेंगे, उतना ही ऊपर जा पायेंगे।

यदि आप साधना को इस दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करें, तो अध्यात्म का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। कर्मकाण्डों से परे अध्यात्म आपके अपने जीवन में प्रकाश और शांति का अनुभव है।

'ऐसा भी है'

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी ने सन् 1945 में एक शांति संदेश लिखा था। उसे पढ़कर आपको एहसास होगा कि उस समय की समस्याएँ और आज की समस्याएँ एक जैसी ही हैं।

उस समय द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था, इसलिए पूरी दुनिया में एक आपातकालीन स्थिति थी। सभी देश और समाज प्रभावित थे। सब जगह भय, असुरक्षा, तनाव, भूख और आवश्यक वस्तुओं की कमी थी। उन्होंने लोगों की समस्याओं को देखकर लिखना शुरू किया और बहुत सुंदर संदेश दिया, जिसे उन्होंने 'शांति का संदेश' कहा। उन्होंने पूरी स्थिति का वर्णन किया और अंत में समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा कि समाधान चीजों को बनाने या तोड़ने, त्यागने या स्वीकार करने में नहीं है, बल्कि समाधान अपनी सोच और समझ में एक छोटा-सा परिवर्तन लाने में निहित है।

उन्होंने उदाहरण के तौर पर एक वाक्य लिया – 'ऐसा ही है।' उन्होंने कहा, 'आप लोग हमेशा कहते हैं कि ऐसा ही है, लेकिन अगर आप 'ऐसा भी है' कहना शुरू कर दें, तो आधी समस्याएँ अपने आप हल हो जाएँगी।' सिर्फ एक वाक्य समस्याओं को आधा कर देगा क्योंकि इस वाक्य में स्वीकृति है। जब आप कहते हैं, 'ऐसा ही है' तब एक धर्म दूसरे धर्म का विरोध करने लगता है। घर में भी अगर आप कहेंगे हैं कि 'ऐसा ही है' तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। हर कोई आपका विरोध करेगा। जब आप एक ही विचार या मत थोपने की कोशिश करेंगे तो हमेशा समस्याएँ पैदा होंगी। धार्मिक संघर्ष इसी वजह से होते हैं। हर कोई कहता है, 'ऐसा ही है।' कोई नहीं कहता, 'ऐसा भी है।' केवल एक वाक्य बदलने से पूरी सोच, नजरिया और व्यवहार बदल जाता है। इस तरह उन्होंने जोर देकर कहा कि चिंतन की प्रक्रिया द्वारा आपको अपने मन से नकारात्मक शब्दों और वाक्यों को निकालने की कोशिश करनी चाहिए। इसका तात्पर्य है विवेक का सही प्रयोग। इसमें मेहनत लगती है, फिर भी यह संभव है।

– 14 जुलाई 2018, गंगा दर्शन

शांति संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आज मानव जाति के सामने मौजूद सभी समस्याएँ शांति पर ही टिकी हैं। शांति प्राप्त करने का रहस्य जानकर, मनुष्य एक विवेकशील सभ्यता, समृद्ध समाज, सुखी परिवार और बुद्धिमान व्यक्ति का निर्माण कर सकेगा।

आँखों पर पट्टी बाँधे मनुष्य अंधेरे में भटकता है, और केवल विध्वंसकारी चीजों को पकड़ता है – परमाणु बम और उसके उपयोग का सबसे 'प्रभावी' तरीका, राजनैतिक षड्यंत्र, आर्थिक एकाधिकार, राष्ट्रवाद, जातिवाद और नस्लवाद की कुत्सित विचारधाराएँ।

आज जो 'शांति' व्याप्त है, वह भय की शांति है, तैयारी की शांति है। प्रबुद्ध लोगों की नेक सलाह को नजरअंदाज करके दुनिया के बड़े-बड़े राष्ट्र अपनी विनाशकारी शक्ति का प्रदर्शन करने पर तुले हुए हैं। इस रास्ते पर युद्ध ही है, शांति नहीं।

विभिन्न धर्मों, राष्ट्रों और जातियों के लोग धर्म, देशभक्ति और अन्य विभिन्न 'वादों' के नाम पर दूसरों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और घृणा भड़काते हैं।

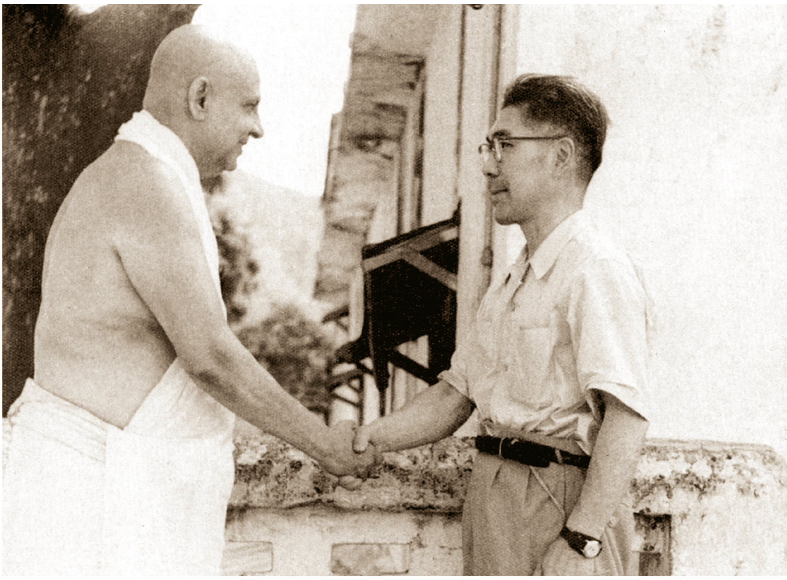

वे यह भूल जाते हैं कि आज समाज की संरचना में जो भी विभाजन हैं, वे मनुष्य की सुविधा और सर्वहित के लिए हैं।

यह असामंजस्य मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है, सबसे पहले घर-परिवार को संक्रमित करता है और धीरे-धीरे समाज, राष्ट्र और संपूर्ण विश्व में फैल जाता है। सामाजिक संरचना में हर प्रकार का पुनर्संयोजन या राजनैतिक व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव भी स्थायी शांति नहीं ला सकता। जहाँ ये आवश्यक भी हों तो मनुष्य के हृदय से ही उत्पन्न होने चाहिए, मानवता की भलाई के लिए।

शांति मनुष्य की अंतरात्मा का स्वभाव है – *शान्तो अयमात्मा*। जो मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त करने का प्रयास करता है, जिसने अपना ध्यान इस आत्मा की ओर लगाना शुरू कर दिया है, वह आत्मा में व्याप्त शांति का आनंद लेता है। जैसे परमाणु विस्फोट मीलों तक विनाश फैलाता है, वैसे ही आत्मा की शांति की यह अलौकिक अनुभूति शांति की एक शक्तिशाली धारा उत्पन्न करती है जो ऐसे योगी के साथ जुड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से अज्ञान और असामंजस्य के अंधकार को दूर कर देती है। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कुछ ही योगी पूरे विश्व को रूपांतरित कर सकते हैं, और सुख, शांति एवं समृद्धि ला सकते हैं, क्योंकि उनके प्रति समर्पित लाखों लोग उनके द्वारा अर्जित आध्यात्मिक निधियों को साझा करेंगे। वे अनुभव करने लगेंगे कि एक ही आत्मा सभी में निवास करती है। एक ही जीवन सभी में रहता है, और एक ही ब्रह्माण्डीय संकल्प असंख्य प्राणियों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता है। वे यह समझने लगेंगे कि सभी भेद-भाव मानव निर्मित हैं और सभी सीमाएँ काल्पनिक हैं। वे मानवता की दृष्टि से सोचना शुरू करेंगे, ब्रह्माण्डीय प्रेम के सार्वभौमिक धर्म का पालन करेंगे। यही शांति का राजमार्ग है।

इसलिए अपनी दृष्टि भीतर की ओर मोड़ो। इंद्रियों के द्वार बंद करो। अशांत मन को संयमित करो। संशयी बुद्धि का वध करो। अपने हृदय को श्रद्धा और भक्ति के अमृत से भर दो। निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा करो। जप करो। एकाग्रचित्त हो जाओ, ध्यान करो। प्रार्थना करो और प्रतीक्षा करो। अपने भीतर शांति खोजो। आत्म-साक्षात्कार करो। एक योगी की तरह चमको, जो मानवता का सबसे बड़े उपकारक है। ईश्वर आप सभी को स्वास्थ्य, दीर्घायु, शांति, समृद्धि और आत्म-साक्षात्कार प्रदान करें।

श्रद्धा की अपरिमित शक्ति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मुझसे प्रायः पूछा जाता है कि शिष्य के कर्मों के प्रसंग में गुरु की क्या भूमिका होती है। इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देना कठिन है, क्योंकि सब कुछ उनके सम्बन्धों की गहराई पर निर्भर रहता है। अगर शिष्य स्वयं को पूर्णतया गुरु पर छोड़ देता है तो वे उसकी नियति की बागडोर पूर्णरूपेण सँभाल लेते हैं, किन्तु यदि सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण प्रयोजनों पर आधारित होता है तो गुरु की सहायता प्राप्त होती तो है, लेकिन वे उसकी नियति के बोझ को स्वीकार नहीं करते हैं।

सिर्फ गुरु ही क्यों, इस चर्चा में हम ईश्वर को भी समाविष्ट कर सकते हैं। ईश्वर आपकी समस्त बाधाओं और कठिनाइयों को जादू की तरह क्षण भर में दूर कर सकते हैं। यदि आप दृढ़ विश्वास से युक्त होकर, मन एवं भावनाओं को संयत कर गहराई में उतर कर प्रार्थना करें तो आपकी सभी समस्याएँ सहजता से सुलझ सकती हैं। यह बहुत सरल प्रक्रिया है, पर लोग ऐसा कर नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में ईश्वर क्या कर सकते हैं? यदि आपका 'टेलीफोन' और 'टेलीग्राम' उनके पास नहीं पहुँच सकेगा तो उनकी सहायता उपलब्ध नहीं हो पायेगी। जो बात ईश्वर के साथ लागू होती है वही गुरु के साथ भी लागू होती है। यदि आप नम्रतापूर्वक स्वयं को गुरु या ईश्वर को पूर्णतः समर्पित कर दें तो आपकी नियति उनकी नियति हो जायेगी।

अपने देश में *'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'* की प्रार्थना की जाती है जिसमें ईश्वर से कहा जाता है कि आप ही मेरे माता-पिता हैं, आप ही मेरे भाई और मित्र हैं, आप ही विद्या और धन-सम्पत्ति हैं तथा आप ही मेरे सर्वस्व हैं। एक बार कुछ धनी लोग मन्दिर में गये, मन्दिर के दरवाजे पर उन्हें जूते खोलने पड़े। वे जब तक मन्दिर में प्रार्थना करते रहे, उनकी एक आँख जूते पर ही लगी रही। 'आप ही मेरे माता-पिता हैं, भाई, मित्र और सर्वस्व हैं' चलता रहा और वे जूते की ओर भी देखते रहे। वे क्षणभर के लिये भी अपने को ईश्वर को समर्पित न कर सके। जब तक प्रार्थना चलती रही, उनका मन जूते पर लगा रहा। इस प्रकार भी गुरु और ईश्वर के प्रति दिखावे की भक्ति का अभ्यास किया जाता है।

इसी प्रकार का एक दूसरा दृष्टान्त है। एक मन्दिर में कुछ लोग देवता की आरती और प्रार्थना कर रहे थे। प्रार्थना थी कि 'मैं धन-सम्पत्ति, सुख-चैन,

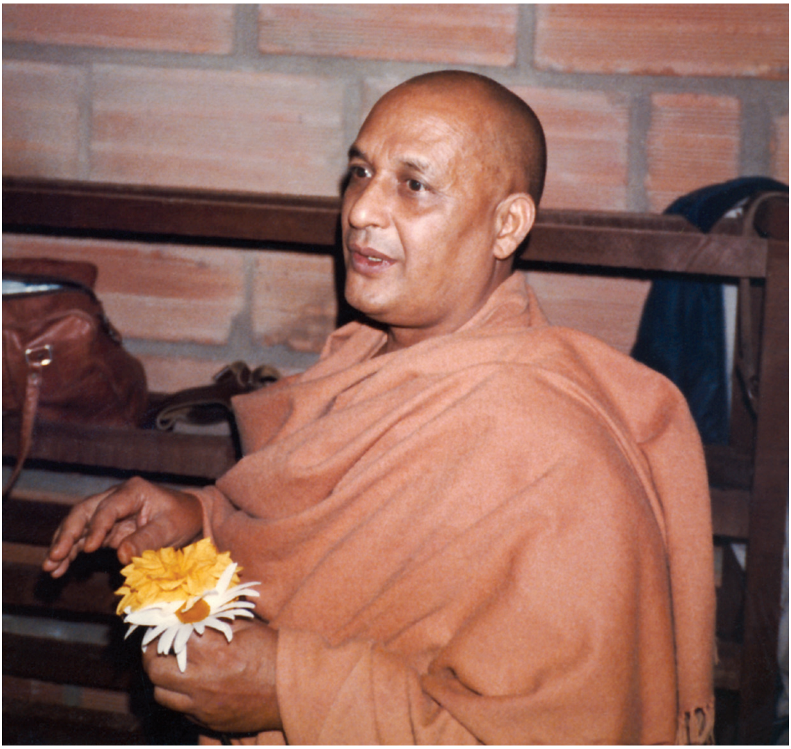

वासना की पूर्ति आदि नहीं चाहता हूँ, मुझे तो सिर्फ आपकी कृपा चाहिये।' प्रार्थना करते समय प्रायः भक्तगण देवी-देवता को सिक्के चढ़ाते हैं। एक सिक्का जमीन पर एक व्यक्ति की बगल में गिर पड़ा। तत्काल उसने उसे अपने पैर से ढक दिया और उस समय वह प्रार्थना कर रहा था कि 'मुझे धन नहीं चाहिये, सम्पत्ति नहीं चाहिये', किन्तु एक रुपये का वह सिक्का उसे चाहिये था!

बुद्धि और विश्वास

हमें ईश्वर के प्रति अपने विश्वास और समर्पण का विश्लेषण करना चाहिये। गुरु और ईश्वर की कृपा की वर्षा तो प्रत्येक व्यक्ति पर होती रहती है, किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये आपको खुला और ग्रहणशील होना पड़ेगा।

श्रद्धा से बड़ी कोई शक्ति नहीं है, इसके द्वारा कुछ भी सम्भव है। और श्रद्धा का सबसे बड़ा शत्रु है बुद्धि। इन दोनों के बीच कदापि सह-अस्तित्व सम्भव

नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की दो पत्नियों के बीच पारस्परिक प्रेम असम्भव है, बुद्धि और विश्वास के साथ भी यही बात लागू होती है, वे एक-दूसरे की सौतन के समान हैं।

प्रायः हम सबके लिये श्रद्धा एक भ्रामक विषय है। सामान्यतः इसका तात्पर्य यह लगाया जाता है कि आप बौद्धिक रूप से किसी बात को स्वीकार करते हैं। किन्तु श्रद्धा का अर्थ इससे कहीं अधिक है। यह एक उच्च शक्ति है। प्रायः हमारा एक विचार या धारणा होती है और हम गलती से उसे श्रद्धा मान लेते हैं। विचार, धारणा या बुद्धि चूक सकती है, किन्तु श्रद्धा अमोघ और अचूक है। ऐसा इसलिये है कि यह मन की अभिव्यक्ति नहीं है। आप मन के द्वारा इसे समझते हैं, किन्तु मन के द्वारा इसे अभिव्यक्त नहीं करते। इसका एक भिन्न स्रोत और एक भिन्न मार्ग होता है।

श्रद्धा विचार से बहुत अधिक गहरी होती है, यह अन्तरात्मा की एक अभिव्यक्ति है। जब आप विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, तो अनेक चीजें, बातें, भावनायें, स्मृतियाँ और इन्द्रिय-विषय पीछे छूट जाते हैं। आप अनुभूति की एक उच्च अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ मन के एक विशेष क्षेत्र में आने वाली चीजें वास्तविक मालूम पड़ने लगती हैं। यही अनुभूति श्रद्धा और विश्वास का आधार है।

अपनी श्रद्धा की रक्षा कीजिये

आपने सन्तों, भक्तों और चमत्कारी व्यक्तियों की अनेक कहानियाँ पढ़ी होंगी। उनके जीवन में ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिनका मानवीय बुद्धि से विश्लेषण नहीं किया जा सकता। ऐसा श्रद्धा के कारण हुआ है। इसलिए आपको अपनी श्रद्धा की रक्षा सतर्कतापूर्वक करनी है, क्योंकि बुद्धि और तर्क श्रद्धा की हत्या कर देते हैं। यदि श्रद्धा और बुद्धि के भेद को ठीक से समझा जाय तो अपनी-अपनी दिशाओं में दोनों का साथ-साथ विकास हो सकता है।

श्रद्धा की रक्षा करने, इसे बढ़ाने और अधिक गहराई से अनुभव करने के लिये भक्त और भगवान या गुरु और शिष्य का सम्बन्ध सर्वश्रेष्ठ साधन है, किन्तु यह सम्बन्ध जीवन्त श्रद्धा पर आधारित होना चाहिये। आपको विश्वास करना होगा, ठीक वैसे ही जैसे आप अपनी माँ पर विश्वास करते हैं। आप कैसे जानते हैं कि वे आपकी माँ हैं? यह श्रद्धा की बात है। इसी प्रकार आपको ईश्वर और गुरु में भी श्रद्धा करनी होगी।

प्रायः हम सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं, उनकी पूजा करते हैं और उनका सम्मान करते हैं, किन्तु परिणाम कुछ होता नहीं। क्यों? इसलिए कि यह श्रद्धा पर निर्भर रहता है। हमने प्रेम, पूजा, श्रद्धा जैसी अच्छी बातें अपने माता-पिता से सीखी हैं, किन्तु ये हमारे लिए जीवन्त अनुभव नहीं बन पाये हैं। बहुत-से लोग तो ईश्वर में अपने उस अल्प विश्वास की भी हत्या कर देते हैं, जिसके आधार पर उनका मनोभावनात्मक अस्तित्व कायम रहा है। अनेक लोग तो यह भी कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं और इस सम्बन्ध में वे तर्क भी देते हैं। इस प्रकार वे दैवी शक्तियों से अपने एकमात्र सम्पर्क को नष्ट कर देते हैं।

अपने विश्वास और श्रद्धा की रक्षा करना आवश्यक है। इस हेतु गुरु-शिष्य सम्बन्ध जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण निधि है। जीवन के उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है, किन्तु इसे बनाये रखना कठिन है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में कैसे श्रद्धा करे? यदि आप मनुष्य हैं तो आप कुछ भी क्यों न हों, आप सीमित हैं, अपूर्ण हैं। शरीर तो स्वयं ही अपूर्णता का प्रतीक है। आपका जन्म हुआ है और देहान्त भी होगा। आपको अमर होना चाहिये, किन्तु शरीर नाशवान् है।

जब गुरु भौतिक शरीर धारण कर जन्म लेते हैं तो वे स्थूल स्तर पर रहते हैं और प्रकृति के नियमों के अधीन होते हैं। वे खाते-पीते हैं, सोते-जागते हैं तथा अन्य लोगों की तरह ही बातें करते हैं। आप कोई भी क्यों न हों, मानव शरीर धारण करते ही आप सीमित हो जाते हैं। जब शिष्य गुरु की सीमाओं के बारे में सोचता है तो उसका विश्वास घटने लगता है, क्योंकि उसे अपने तथा गुरु के बीच कम अन्तर मालूम पड़ता है। वह चाहता है कि गुरु कुछ चमत्कारों का प्रदर्शन करें ताकि उनमें उसकी श्रद्धा सशक्त हो सके, लेकिन गुरु कभी भी ऐसा नहीं करते। चमत्कार तो एक जादूगर भी कर सकता है, इसलिए यह श्रद्धा विसित करने का आधार नहीं हो सकता।

मतभेद दूर कीजिये

श्रद्धा शिष्य की सर्वोत्तम सम्पत्ति है। यदि श्रद्धा है तो सब कुछ है और श्रद्धा के बिना आपके पास कुछ भी नहीं है। श्रद्धा बाह्य क्रिया-कलापों का परिणाम नहीं है, इन्द्रिय एवं मानसिक प्रक्रियाओं से भी इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसकी उत्पत्ति अन्तरात्मा की सतत् सजगता से होती है। आप ज्यों-ज्यों अपने

अन्तरतम की गहराई में उतरते हैं, आपको आन्तरिक प्रकाश का दर्शन होता है और आपकी श्रद्धा अधिक सशक्त होती जाती है। जहाँ श्रद्धा है वहीं शक्ति और प्रकाश है।

श्रद्धा ही शिष्य के जीवन का आधार है। यदि गुरु के व्यवहार से शिष्य की श्रद्धा भंग हो जाय तो समझना चाहिये कि उसका सब कुछ खो गया है। श्रद्धा के एक बार नष्ट हो जाने पर उसका पुनर्निर्माण बहुत कठिन होता है। मनुष्य होने के नाते गुरु में सम्भवतः कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं, किन्तु इसके साथ ही शिष्य को भी अपने उत्तरदायित्वों से नहीं भागना चाहिए। उसे सोचना चाहिये कि जब उसने गुरु का चयन किया तो वह सही था या गलत। अब किसी विशेष परिस्थिति में, जो शिष्य के लिये सुखद नहीं है, वह गुरु में कुछ दोष देखता है, जो गुरु में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता।

ऐसी स्थिति में उसे शीघ्र ही गुरु के समीप जाकर अपनी मानसिक अवस्था से उन्हें अवगत कराना चाहिये। उनके समक्ष अपना दृष्टिकोण बल देकर प्रस्तुत करना चाहिये ताकि वे उसकी समस्या को ठीक से समझ सकें। अपने गुरु को बुरा मानकर उनसे दूर भागना तथा उनके बारे में दुष्प्रचार करना शिष्य के लिए कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। यदि उनके बीच खुलकर बातचीत हो तो शिष्य की अनेक जटिलताओं और समस्याओं का समाधान सहजता से हो सकता है।

इस प्रकार मतभेदों को दूर कर सम्बन्ध सुधारा जा सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हो सके तो शिष्य को गुरु से पूछना चाहिये कि वह क्या करे। यदि गुरु को अपनी गलती का अनुभव हो जाय तो उन्हें अपना उत्तरदायित्व भी समझना चाहिये। उन्हें निश्चित रूप से यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि अब वे शिष्य का मार्गदर्शन नहीं कर सकेंगे। ऐसी स्थिति में एक निष्कपट गुरु शिष्य से स्पष्ट रूप से कहेंगे कि अब वे उसके आध्यात्मिक कल्याण का उत्तरदायित्व वहन नहीं कर सकेंगे तथा उसे कोई दूसरा गुरु ढूँढ़ लेना चाहिये।

यदि गुरु से कोई गलती नहीं हुई है तथा सारी बातें गलतफहमी के कारण उत्पन्न हुई हैं, तो उन्हें शिष्य को यह समझाने का प्रयास करना चाहिये कि उसने उन्हें समझने में भूल की है। किन्तु यदि गुरु दम्भी हैं, और गलत होते हुए भी इस बात पर बल देते हैं कि वे सही हैं, तो शिष्य को नये सिरे से अपनी आध्यात्मिक यात्रा शुरू करनी चाहिये तथा एक नया गुरु खोजना चाहिये। इस परिस्थिति में यह महत्त्वपूर्ण है कि शिष्य कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया न करे, परन्तु अधिकतर शिष्य ऐसा करते हैं और उनके अन्दर यह विचार उत्पन्न होता है कि गुरु की कोई आवश्यकता नहीं है। तब वे अधिकाधिक लोगों के समक्ष इस विचार को प्रकट करते हैं, किन्तु सच्चा जिज्ञासु शिष्य सम्पूर्ण परिस्थिति पर शान्तिपूर्वक विचार करेगा तथा स्वीकार करेगा कि गुरु उसे समझाने में सक्षम नहीं थे। इसलिए एक नये गुरु की खोज करना उसका कर्तव्य है जिनसे सही मार्गदर्शन प्राप्त हो सके।

शिष्य की विशेषता

इस विषय में एक अन्य दृष्टिकोण भी है। कभी-कभी शिष्य गुरु से अपनी श्रद्धा द्वारा बँधा होता है, उनकी ऊँची योग्यता द्वारा नहीं। इस प्रकार के सम्बन्ध में शिष्य में ही विशिष्ट गुण होते हैं, गुरु में नहीं। वह पूर्ण श्रद्धा और अटल भक्ति से युक्त होता है तथा उसमें आलोचनात्मक बुद्धि का सर्वथा अभाव होता है। उसके लिये इस बात का कोई महत्त्व नहीं होता कि गुरु कितना अधम और ढोंगी है। यदि वह पूर्ण श्रद्धा से युक्त है तो अपने आन्तरिक गुरु से अवश्य ही उसका साक्षात्कार होगा। ऐसा शिष्य अपने गुरु से श्रेष्ठतर होता है।

यदि शिष्य के अन्दर श्रद्धा है और गुरु में इसका अभाव है तो समस्त कार्य पूर्णरूपेण सम्पादित होते हैं। यदि गुरु के अन्दर श्रद्धा है और शिष्य इससे रहित है तब भी बात बन सकती है, किन्तु यदि दोनों में श्रद्धा की शक्ति का अभाव हो

तो स्थिति निराशाजनक है और तब उनका आध्यात्मिक पतन अवश्यम्भावी है। किन्तु मैं मानता हूँ कि ऐसी स्थिति शायद कभी भी उत्पन्न नहीं होती।

चमत्कारों की जननी

यदि आपमें श्रद्धा है तो आप ऊँची अपेक्षाएँ रख सकते हैं। श्रद्धा को सशक्त बनाकर महान् कार्यों का सम्पादन किया जा सकता है। विभिन्न धार्मिक कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों का प्रमुख लक्ष्य श्रद्धा को पुनर्जीवित करना और दृढ़ बनाना है। श्रद्धा के अभाव में आप कुछ भी आशा मत कीजिये, इसके बिना जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रद्धा के समाप्त होने से दिल टूट जाता है, निराशा धर दबाती है और आप कुछ भी करने लायक नहीं रह जाते।

योग या मन्त्र का अभ्यास करने तथा गुरु के निकट जाने से आपकी श्रद्धा मजबूत होती है। अपनी श्रद्धा को सदैव मजबूत बनाये रखने के लिये आपको गुरु से आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। यदि आप उन पर सन्देह करने लगे हैं या आपके मन में उनके प्रति नकारात्मक विचार उभरने लगे हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि आप अपनी श्रद्धा की हत्या कर रहे हैं।

समस्त धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक साधक को इस बात के प्रति अत्यधिक सतर्क रहना चाहिये कि उसकी श्रद्धा भ्रान्तियों से ग्रस्त न हो। कहा तो यहाँ तक गया है कि यदि आपका स्वास्थ्य, धन-सम्पत्ति आदि नष्ट हो गया है तथा आप दीन-हीन हो गये हैं तो चिन्ता की कोई विशेष बात नहीं है, किन्तु हर परिस्थिति में अपनी श्रद्धा की रक्षा कीजिये। यदि जीवन में आप सब कुछ खो चुके हैं तो श्रद्धा के द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि यह चमत्कारों की जननी है। यदि आप दृढ़ श्रद्धा से युक्त हैं तो आपके लिये कोई भी कार्य या उपलब्धि असम्भव नहीं है।

यह हमेशा याद रखिये कि श्रद्धा एक सबल शक्ति है। सशक्त श्रद्धा द्वारा आप प्रकृति तथा भौतिक पदार्थों को नियंत्रित कर सकते हैं। श्रद्धा को मजबूत बनाने के प्रसंग में गुरु का स्थान सर्वप्रथम होता है। अपना शरीर, मन और आत्मा उनको समर्पित कीजिये। आप उनके हैं और वे आपके। जब आपके मन में नकारात्मक विचार उत्पन्न होने लगें तो सावधान हो जाइये कि माया का खेल हो रहा है, यह पतन का कारण हो सकता है।

श्रद्धायुक्त सत्यनारायण व्रत

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

नारद ऋषि त्रिलोक-संचारी हैं, जो तीनों लोकों में विचरण करते रहते हैं। एक बार जब वे पृथ्वी पर आए तो वहाँ घोर दुःख व्याप्त था। वे मानव पीड़ा को दूर करने का कोई उपाय नहीं खोज पा रहे थे, इसलिए वे भगवान नारायण के पास गए और उन्हें पृथ्वी की दुखद स्थिति बताई।

भगवान नारायण ने नारद से कहा, 'हे ऋषिवर! संक्रांति या पूर्णिमा की शाम को लोग सत्यनारायण व्रत करें। सभी लोग सत्यनारायण की कथा सुनें। इससे उनके सभी दुःखों का अंत हो जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं।'

इसके बाद ऋषि नारद पृथ्वी पर लौटे और सत्यनारायण व्रत की महिमा का उपदेश दिया। कई लोगों ने पूरे दिन बिना कुछ खाए इस व्रत का पालन किया और अपनी मनोकामनाएँ पूरी कीं। सभी सुखी और समृद्ध हुए।

सत्यनारायण व्रत करने में ज़्यादा खर्च नहीं आता। आपको बस कथा वाचन के लिए आए पंडित को थोड़ी-सी दक्षिणा देनी है और फिर थोड़ा-सा प्रसाद बाँटना है। प्रसाद भी ज़्यादा महँगा होने की जरूरत नहीं। प्रसाद बनाने के लिए थोड़ा-सा गेहूँ का आटा और चीनी का इस्तेमाल करना होगा। थोड़ा-सा दही और कुछ फल भी चाहिए। गरीब-से-गरीब आदमी भी यह व्रत रख सकता है।

उत्तर भारत में अधिकांश लोग यह व्रत करते हैं। इस पूरे व्रत को पूरा करने में लगभग तीन घंटे लगते हैं। यह आमतौर पर पूर्णिमा के दिन, विशेष रूप से कार्तिक, वैशाख, श्रावण और चैत्र पूर्णिमा पर, तथा संक्रांति के दिन किया जाता है। इसे अमावस्या के दिन भी किया जा सकता है।

इस व्रत से पाँच कथाएँ जुड़ी हैं। ये भगवान नारायण की महिमा, उनकी कृपा, उनके प्रसाद और व्रत के पालन से मिलने वाले अपार लाभ का वर्णन करती हैं। जो व्यक्ति इन कथाओं को श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रचित्त होकर सुनता है, उसे बहुत लाभ होता है। इनमें से पहली कथा देवर्षि नारद की है, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। अन्य कथाओं में सत्यनिष्ठा और वचनों को पूरा करने के गहन नैतिक उपदेश निहित हैं।

एक गरीब ब्राह्मण की कहानी

किसी समय एक बहुत ही गरीब ब्राह्मण रहता था, जो भिक्षा पर जीवन यापन करता था। भगवान नारायण एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में उसके सामने प्रकट हुए, उसे सत्यनारायण व्रत करने को कहा और उसे वचन दिया कि इस व्रत को करने से उसकी दरिद्रता दूर होगी। ब्राह्मण ने वैसा ही किया और उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हुईं।

एक लकड़हारे की कहानी

फिर उसी ब्राह्मण ने बड़े स्तर पर व्रत का आयोजन किया। एक गरीब लकड़हारा पानी पीने के लिए ब्राह्मण के घर के आंगन में आया। सत्यनारायण की कथा चल रही थी। कथावाचक की वाक्पटुता से मोहित लकड़हारा वहीं बैठकर ध्यानमग्न होकर कथा सुनने लगा। उसे भी अपने घर में व्रत रखने की प्रेरणा मिली। उसने प्रसाद लिया और उसे खा लिया।

फिर वह बाज़ार गया और अपनी लकड़ियों की गठरी बेच दी। उसे सामान्य से दुगुनी कीमत मिली। उसने तुरंत व्रत के लिए ज़रूरी सामान खरीदा और अपने परिवार के साथ पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ व्रत रखा। उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हुईं। उसने इस धरती पर जो कुछ भी संभव था, उसका आनंद लिया और मृत्यु के बाद उसे सत्यलोक का परमधाम प्राप्त हुआ, जहाँ केवल सत्य की प्रतिष्ठा है।

एक व्यापारी की कहानी

एक समय की बात है, पृथ्वी पर राजा उल्कामुख राज्य करते थे। वे भगवान सत्यनारायण के भक्त थे। उनकी रानी भी बड़ी धर्मपरायण थीं। एक दिन उन्होंने पवित्र भद्रशीला के तट पर सत्यनारायण व्रत का अनुष्ठान किया।

साधु नामक एक व्यापारी राजा के पास आया और पूछा कि वे क्या कर रहे हैं। राजा ने उसे सत्यनारायण व्रत के बारे में पूरी जानकारी दी। घर लौटने पर साधु ने अपनी पत्नी लीलावती को राजा से सुनी सत्यनारायण व्रत की महिमा सुनाई। इसके बाद, दोनों ने संतान प्राप्ति की कामना से व्रत करने का निश्चय किया। लीलावती ने शीघ्र ही एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम उन्होंने कलावती रखा।

साधु ने अब सोचा कि वह अपनी बेटी की शादी होने तक व्रत को स्थगित कर देगा। समय के साथ कलावती का विवाह हो गया, लेकिन साधु अपना संकल्प पूरी तरह भूल गया था। कुछ समय बाद, वह अपने दामाद के साथ व्यापार के लिए विदेश चला गया।

भगवान नारायण को लगा कि अब समय आ गया है कि साधु को उसका संकल्प याद दिलाया जाए। एक रात जब साधु रत्नसारपुर नामक स्थान पर था, उसे राजा के सिपाहियों ने अचानक उसके दल सहित गिरफ्तार कर लिया और कारागार में डाल दिया। सिपाहियों को शक था कि वे चोर हैं। उसी समय, चोरों ने साधु के घर पर डाका डालकर उसकी सारी संपत्ति लूट ली।

बेचारी लीलावती और कलावती सड़कों पर दयनीय जीवन बिताने लगीं। एक दिन कलावती भिक्षा लेने गई और संयोग से उसे एक मंदिर से भगवान सत्यनारायण का प्रसाद मिला। वह अपनी माँ के पास लौटी और उनसे व्रत रखने की विनती की। इस प्रकार दोनों ने व्रत रखकर भगवान सत्यनारायण की पूजा की।

उसी रात रत्नसारपुर के राजा ने स्वप्न में देखा कि साधु और उसके साथियों ने वास्तव में कोई चोरी नहीं की है। उसे स्वप्न में आदेश मिला कि उन्हें छोड़ दिया जाना चाहिए, नहीं तो वह अपने बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट हो जाएगा। राजा ने तुरन्त साधु और उसके साथियों को उनके माल का दुगुना मूल्य देकर जेल से रिहा कर दिया।

साधु अपने गाँव लौट रहा था कि तभी भगवान सत्यनारायण एक भिक्षुक के वेश में उसके सामने प्रकट हुए और उससे पूछा कि नाव में क्या है। साधु

को शक हुआ कि भिक्षुक उससे कुछ पैसे माँग सकता है। इसलिए उसने उत्तर दिया कि नाव में केवल पत्तों की गठरियाँ हैं।

भिक्षुक ने उत्तर दिया, 'हे व्यापारी, तुम्हारी बात सच होगी!' उस रात जब साधु अपनी नाव की नियमित जाँच कर रहा था तो उसने पाया कि सारे रत्न सचमुच पत्तों में बदल गए थे! उसे एहसास हुआ कि यह भिक्षुक से झूठ बोलने के कारण हुआ था। वह तुरंत भिक्षुक की तलाश में निकला, उसे एकांत जगह पर पाया और उससे क्षमा याचना की।

भिक्षुक ने कठोरता से कहा, 'तुमने सत्यनारायण व्रत रखने का अपना वचन पूरा नहीं किया।' फिर उसने व्यापारी को अपनी असली पहचान बताई, उसे सांत्वना दी और अदृश्य हो गया। साधु अपनी नाव पर वापस आया और पाया कि सभी थैलों में फिर से रत्न भरे हुए थे। उसने पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ भगवान सत्यनारायण की पूजा की।

पाँच दिन बाद साधु अपने घर पहुँचा। उसने अपनी पत्नी और बेटी को अपने आगमन की सूचना देने के लिए संदेश भेजा। जिस समय दूत समाचार देने पहुँचा, उस समय लीलावती और कलावती सत्यनारायण कथा सुन रही थीं। पूजा समाप्त करने के बाद वे साधु से मिलने गईं, लेकिन दुर्भाग्यवश वे भगवान का प्रसाद लेना भूल गईं।

भगवान सत्यनारायण प्रसाद के प्रति उनकी लापरवाही की ओर इशारा करना चाहते थे। धन-संपत्ति और दामाद सहित साधु की नाव डूब गई। दामाद नदी में अपने जीवन के लिए छटपटा रहा था। किनारे पर मौजूद साधु ने भगवान से आर्त होकर प्रार्थना की। आकाश में एक दिव्य वाणी सुनाई दी, 'कलावती ने मेरा प्रसाद ग्रहण नहीं किया है, इसलिए ऐसा हुआ है।' कलावती जल्दी से अपने घर वापस गई और प्रसाद ग्रहण किया। वह लौटी और बेहद खुशी के साथ अपने पिता और पति से मिली, जो भगवान सत्यनारायण की कृपा से चमत्कारिक रूप से बच गए थे। यहाँ तक कि नाव और रत्न भी चमत्कारिक रूप से वापस मिल गए। सभी ने आनन्द मनाया। साधु ने अपनी यात्रा के

दौरान घटी सारी बातें सुनाईं और बताया कि कैसे संकट में भगवान ने उसे बचाया था।

इसके बाद, साधु और लीलावती ने पूर्णिमा और संक्रांति के समय नियमित रूप से सत्यनारायण व्रत का पालन किया और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। अंत में उन्हें भगवान नारायण का परमधाम प्राप्त हुआ।

राजा तुंगध्वज की कथा

एक दिन राजा तुंगध्वज शिकार खेलने निकले। काफी दूर निकल जाने के बाद वे थक गए और एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गए। कुछ ग्वाल-बाल उस वट वृक्ष के पास सत्यनारायण का व्रत कर रहे थे। उन्हें पता चला कि एक राजा उस वट वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। उनमें से एक बालक ने आदरपूर्वक प्रसाद उठाया और राजा के सामने रख दिया।

राजा न तो पर्व में जाना चाहता था, न ही भगवान के आगे दंडवत् प्रणाम करना चाहता था। उसने प्रसाद भी नहीं लिया। बल्कि उसने प्रसाद को हीनता से देखा और गर्व सहित अपनी राजधानी लौट गया।

भगवान राजा को सबक सिखाना चाहते थे। राजा को खबर मिली कि उसके बेटे-बेटियाँ मर गए हैं और उसकी सारी संपत्ति नष्ट हो गई है। उसे मन-ही-मन समझ आ गया कि यह सब भगवान और उनके प्रसाद का अनादर करने के कारण हुआ है। उसे अपने किए पर बहुत पछतावा हुआ।

दुःखी किन्तु पश्चात्ताप भरे हृदय से वह उस बरगद के पेड़ के पास गया जहाँ बालकों ने भगवान की पूजा की थी। अब उसने स्वयं भी अगाध श्रद्धा और भक्ति के साथ पूजा की। भगवान सत्यनारायण ने राजा पर अपनी कृपा बरसाई। उसे उसकी खोई हुई संपत्ति और बच्चे वापस मिल गए। उसके बाद से राजा नियमित रूप से भगवान की पूजा करने लगा और सुखपूर्वक रहने लगा।

जो मनुष्य इस व्रत का पालन श्रद्धा, भक्ति और समर्पण के साथ करता है; जो भगवान सत्यनारायण की पवित्र कथा श्रद्धा और भक्ति के साथ सुनता है; जो पूजा में सम्मिलित होता है और प्रसाद ग्रहण करता है – उसे निश्चय ही आरोग्य, धन और आनंद की प्राप्ति होती है। वह सांसारिकता के दलदल और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह अंततः सत्य में स्थित हो जाता है। कलियुग में सत्यनारायण व्रत द्वारा भगवान श्रीहरि की पूजा करने से मनुष्य सुखी, शांत और समृद्ध होता है। प्राचीन शास्त्रों में यही सत्य वर्णित है।

श्रद्धा से निखरती मंत्रशक्ति

स्वामी निरंजनानन्द जी को कुछ वर्ष पूर्व बल्गेरिया की एक युवा शिष्या से पत्र मिला जो यह सिद्ध करता है कि दृढ़ संकल्प, नियमित अभ्यास और गुरु के प्रति सहज श्रद्धा-विश्वास शिष्य के जीवन में अवश्य फलीभूत होता है और एक सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

हरि ॐ स्वामीजी!

कुछ समय पूर्व मैंने आपको अपने पिताजी के नशे की आदत के बारे में चिट्ठी लिखी थी और इस सम्बन्ध में आपकी सलाह और सहायता माँगी थी।

कुछ सप्ताह बाद जब मेरे हाथों में चिट्ठी का जवाब आया, तो मेरे दिल में खुशी की लहर दौड़ गई। पत्र में मेरे लिए तीन निर्देश दिये गये थे –

1. संकल्प सहित मंत्र साधना का नियमित अभ्यास। इस साधना के अंतर्गत महामृत्युंजय मंत्र तथा गायत्री मंत्र का ग्यारह बार जप और दुर्गा जी के बत्तीस नामों का तीन बार पाठ शामिल था।
   पत्र के निर्देशानुसार मैंने अपने पिता के लिए एक संकल्प निर्धारित किया। सबेरे उठते ही मैं यह मंत्र साधना न केवल अपने पिता के लिए करती हूँ, बल्कि इसे करने के बाद, अपने गुरु की साधना की सफलता के लिए भी तीनों मंत्रों का ग्यारह-ग्यारह बार जप करती हूँ।
2. यदि सम्भव हो तो छः महीने तक प्रतिदिन गायत्री मंत्र का 108 बार जप।
3. छः महीने तक प्रतिदिन रात्रि के समय अपने पिता के भ्रूमध्य पर संकल्प स्थापित करते हुए उसे सात बार दोहराना।

मैंने इन निर्देशों पर तुरंत अमल करना शुरू कर दिया।

आज मैं आपके समक्ष अपना अनुभव, आनन्द और आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। मैं अभी भी आपकी दी हुई साधना श्रद्धा, विश्वास, लगन और अपने पिताजी के प्रति प्रेम के साथ नियमित रूप से कर रही हूँ।

पहली चीज, पिताजी ने मुझसे बातचीत करनी शुरू की, जो उन्होंने पिछले चार महीनों से छोड़ दी थी। मेरी माँ और बहन के साथ भी वे बातें करने लगे, बिना कोई झुंझलाहट या गुस्सा दिखाये। कुछ समय बाद वे मेरे भांजे के साथ

भी घुल-मिलकर बातें करने लगे। दोनों साथ-साथ बाजार गए और पिताजी ने संगीत-वाद्यों की एक दुकान से उसके लिए गिटार खरीदा। आये दिन वे उसके साथ बैठ जाते और उसे संगीत के बार में बताते, गिटार बजाना सिखाते।

पिताजी ने पहले की तरह किताबें पढ़नी शुरू कीं, घरवालों के लिए स्वादिष्ट व्यंजन बनाने शुरू किये, मेरे साथ सिनेमा, संगीत, राजनीति और अध्यात्म जैसे दिलचस्प विषयों पर बातचीत करनी शुरू की। उन्होंने छोटी-छोटी बातों के लिए मुझे और मेरी माँ को सताना छोड़ दिया।

गायत्री जप शुरू करने के दो महीने बाद, 15 साल में पहली बार पिताजी ने स्वीकार किया कि उन्हें शराब की लत है। कुछ हफ्ते बाद उन्होंने मुझे बतलाया कि उनकी हार्दिक इच्छा है कि वे इस लत से छुटकारा पाकर एक संतुलित, संयमित और तनावरहित जीवन जी सकें।

इस साधना से व्यक्तिगत तौर पर मुझे भी बहुत लाभ हुआ। मेरा मन शांत और संतुलित रहने लगा है, मेरे धीरज, साहस और समझ में बढ़ोत्तरी हुई है।

मेरे जीवन में यह किसी चमत्कार से कम नहीं, जिसके लिए स्वामीजी, मैं आपको तहे दिल से धन्यवाद देती हूँ।

हरि ॐ तत्सत्!

श्रद्धा और विश्वास का महत्त्व

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भगवान का कोई भी स्वरूप हो, उसका महत्त्व श्रद्धा और विश्वास से होता है। अगर श्रद्धा-विश्वास नहीं है, तो शिवलिंग भी केवल पत्थर है। श्रद्धा-विश्वास के बिना उसका कोई महत्त्व नहीं। श्रद्धा हर व्यक्ति के अन्दर तब तक होती है जब तक उसका हृदय बच्चे की तरह पवित्र और निष्कपट रहता है, झूठ नहीं बोल सकता, बातें छुपा नहीं सकता, जो भी मुँह में आया, बोल दिया। बच्चे कहते हैं न, 'पिताजी कह रहे हैं कि वे घर में नहीं हैं!' इसको कहते हैं, बच्चे की तरह मासूम होना। बच्चे की तरह जो निष्कपटता है, वही श्रद्धा है। और यह जो बुद्धि है, बुद्धि माने खोपड़ी, यह खोपड़ी भगवान के बारे में सोच सकती है, भगवान के बारे में लिख सकती है, मगर यह खोपड़ी भगवान के बारे में जानती नहीं है।

भगवान का खोपड़ी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह सब महात्माओं ने कहा है। अगर तुमको भगवान का कुछ भी अनुभव करना हो, तो खोपड़ी को कमरे में बन्द करके आना। खोपड़ी का मतलब विचार। क्यों, क्या, अच्छा-खराब, यह सब खोपड़ी का विषय है। यह जो हम बोल रहे हैं, यह खोपड़ी है। यह बुद्धि का विषय है। इससे भगवान नहीं मिलते। भगवान को प्राप्त करने के लिए, भगवान का दर्शन करने के लिए, उनके आशीर्वाद पाने के लिए छोटे बच्चे की तरह सरल होना चाहिए। यह नहीं सोचना कि मैं पापी हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। मनुष्य चाहे सदाचारी हो या दुराचारी, पापी हो या पुण्यात्मा, उससे कोई मतलब नहीं है। भगवान कहते हैं, 'जो निष्कपट होकर मेरे पास आता है, उसे मैं अपना रूप दिखाता हूँ।' इसलिए भगवान के आगे जो पूजा की जाती है, उसे कभी समझने की कोशिश नहीं करना। छोटा पत्थर भी भगवान हो जाता है।

भगवान को तुम किसी भी रूप में देख सकते हो। शिवलिंग में भी देख सकते हो, शालीग्राम में भी देख सकते हो, और तो क्या, बकरी के रूप में भी देख सकते हो। उसके लिए एक ही योग्यता होनी चाहिए – '*मोहि कपट छल छिद्र न भावा।*' मन में कुछ और बाहर से कुछ, इसको कपट कहते हैं। कपट भगवान को ही नहीं, हम लोगों को भी पसन्द नहीं है। तुम्हारा नौकर, तुम्हारी स्त्री या तुम्हारे बच्चे मन में रखें कुछ और बोलें या करें कुछ और, तो बुरा लगता है न? तो भगवान को कैसे अच्छा लगेगा?

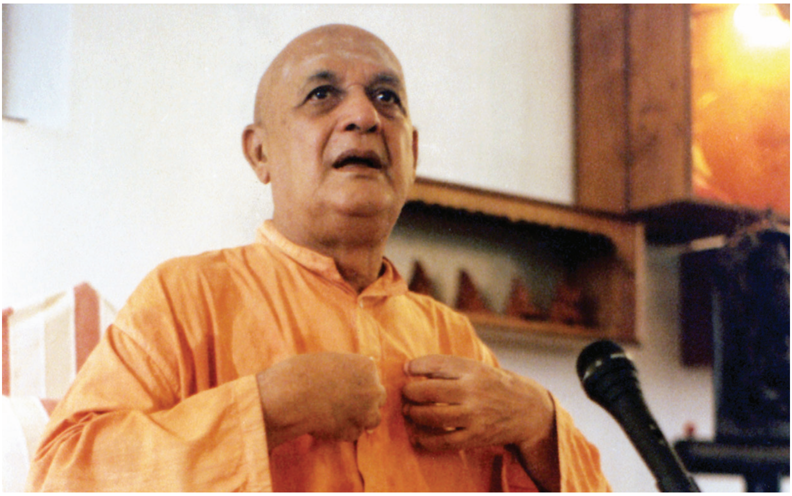

भगवान के सामने दिल खोलना है। चोर हो तो क्या हुआ? वेश्या हो तो हो, क्या फर्क पड़ता है? उपमा तो समाज ने दी है। ब्राह्मण का ठप्पा तो समाज ने दिया है न? भगवान ने तो तुमको ब्राह्मण नहीं बनाया। यादव का ठप्पा तुमको किसने दिया? भगवान ने तुमको यादव बनाया क्या? भगवान ने तुमको लोहार बनाया क्या? भगवान ने तुमको बढ़ई बनाया क्या? ये सब तो हमने बनाये हैं। भगवान के सामने तुम केवल एक आत्मा हो, जो भटक रही है। संसार में रहते हुए जब तुम भगवान के पास जाते हो और उनसे प्रार्थना करते हो, तब तुम बिल्कुल भूल जाओ कि तुम नालायक हो। केवल एक बात याद रखो, भगवान हमारी प्रार्थना जरूर सुनेंगे। आखिर भगवान तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनेंगे? तुम तो सुन रहे हो न? जब तुम कहते हो, तब तुम सुनते हो या नहीं? जब तुम सुनते हो, तब वही तो सुनते हैं! वही तुम हो। प्रार्थना करने वाले भी तुम हो और प्रार्थना सुनने वाले भी तुम ही हो! तुम सुनते हो तो भगवान भी सुनते हैं।

लेकिन हम लोगों का दिमाग चलता रहता है। गणेश जी ने दूध पीया या नहीं? गणेश जी ने दूध पीया कि नहीं, मुझे नहीं मालूम, लेकिन उज्जैन में काल भैरव को मैंने एक बोतल ब्रांडी जरूर पिलाई और वे पी गए! मेरे सामने सब ने ब्रांडी पिलाई और वे सब पी गए। *तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी* – तुम तो किताब की बात कहते हो न? मैं तो आँखों से देखा हुआ कहता हूँ।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online | **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मेरे आराध्य

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

पृष्ठ 384, ISBN: 978-81-86336-88-5

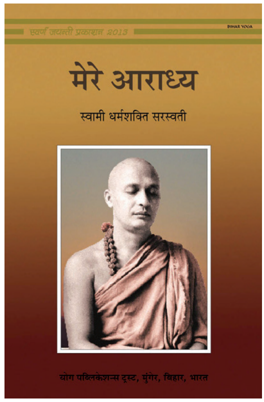

उपलब्ध

संतों का जीवन सदा से ही सब के लिए अजस्र प्रेरणा का स्रोत रहा है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ऐसे अनोखे साधु व योगी हैं, जिन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर वनान्त में समाधि नहीं लगायी, बल्कि अपनी योग-शक्ति का प्रयोग निरंतर जन-कल्याणार्थ करते रहे; और इस संसार सागर से निर्लिप्त ही रहे। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया, उसका जीवन परिवर्तित हो गया और वह सदा के लिए इनका होकर रह गया। आध्यात्मिक दृष्टि से इस 'गुरु गीता' की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025-26

योगपीठ कार्यक्रम

जनवरी 18–23	*बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस*
फरवरी 14	*बाल योग दिवस*
मई 6	*मुंगेर आगमन*
नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15 2025	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव*
फरवरी 1–अप्रैल 30	*संन्यास अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*
फरवरी 21–27	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 6–12	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
अप्रैल 4–10	*धारणा प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31 2025	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*
मार्च–अप्रैल	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)*
अप्रैल 1–30	*पारम्परिक योग प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें